कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 15, Issue 59
July-Sept., 2018

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR-PUBLISHER : Dr. Sneh Thakore - Awarded By The President Of India
Limka Book Record Holder

संपादन व प्रकाशन
डॉ. स्नेह ठाकुर
भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १५ - अंक ५९, जुलाई - सितम्बर २०१८

मैं और तू दो तो नहीं

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि'

मेरे देश
तेरा चप्पा-चप्पा मेरा शरीर है
तेरा जल मेरा मन है
तेरी वायु मेरी आत्मा है
इन सबसे मिलकर ही
तू बनता है मेरे देश
मैं और तू दो तो नहीं है।
शरीर आत्मा मन
एक ही प्राणी के
स्थूल या सूक्ष्म अंग है
मैं इन्हें बँटने नहीं दूँगा
मैं इन्हें लुटने नहीं दूँगा
मैं इन्हें मिटने नहीं दूँगा.

वसुधा

सम्पादन व प्रकाशन : डॉ. स्नेह ठाकुर

(पोस्ट-डॉक्टरल फ़ेलोशिप अवार्डी)

भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
सम्पादकीय		२
वन्दे मातरम्	बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय	३
भारत भारत है, इंडिया नहीं	प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी	४
चले जाना फिर	बेनू सतीश कान्त	६
चन्द्र शेखर आज़ाद होने का अर्थ	सुशील कुमार शर्मा	७
ऐ मेरे वतन के लोगों	रामचन्द्र द्विवेदी 'प्रदीप'	९
प्रत्यक्ष	पद्मश्री डॉ. नरेन्द्र कोहली	१०
श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान के जन्मदिन पर	मनोज कुमार शुक्ल 'मनोज'	२२
राष्ट्र-भक्ति का अनूठा उदाहरण : भाषा का महत्त्व	वैश्विक हिन्दी सम्मेलन से साभार	२४
तन तो आज स्वतंत्र हमारा	गोपाल दास 'नीरज'	२५
जीवन : शब्दों के बीच और शब्दों से परे	प्रो. गिरीश्वर मिश्र	२७
वर दे वीणावादिनी वर दे	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	२९
१२१ वर्षीय बाबा शिवानन्द	डॉ. अजय श्रीवास्तव	३०
अपनी गंध नहीं बेचूँगा	बालकवि बैरागी	३३
आस, निराश भई	डॉ. एम.एल. गुप्ता 'आदित्य'	३४
मैं कौन हूँ?	डॉ. शशि ऋषि	३८
बैधा	दिलीप कुमार सिंह	३९
बीता कल	अक्की शर्मा 'विकास'	४३
मैं और तू दो तो नहीं	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि'	१ अ
डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४ अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00, भारत - रु. ६००.००

डाक द्वारा By Mail $35.00, International Mail $40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com, kavitakosh.org/vasudhapatrika

e-mail: dr.snehthakore@gmail.com

सम्पादकीय

अति प्रसन्नता की बात है कि वसुधा के लेखक, वसुधा के परम हितैषी पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि जो हिन्दी व अँग्रेजी में विशालकाय ग्रन्थ लिखते हैं, काव्य-सृजन करते हैं तथा रोमा यायावर साहित्य के विश्व-विख्यात हस्ताक्षर हैं, उन्हें हाल ही में भारत सरकार की ओर से नीति आयोग (सामाजिक न्याय व सशक्तिकरण प्रभाग) का विशेषज्ञ-सदस्य मनोनीत किया गया है. ठाकुर साहब, पत्रिका परिवार तथा मेरी ओर से हार्दिक बधाई. उल्लेखनीय है कि नीति आयोग भारत सरकार के सर्वोच्च संस्थान योजना आयोग का परिवर्तित नाम नीति आयोग हो गया है जिसके अध्यक्ष माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी हैं.

एक अन्य प्रसन्नता का समाचार है कि वसुधा के परम हितैषी, पूर्व सांसद, राजभाषा की संसदीय समिति के पूर्व उपाध्यक्ष तथा आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी के अध्यक्ष पद्मभूषण डॉ. लक्ष्मी प्रसाद यार्लगड्डा ने देश की सर्वाधिक प्राचीन हिन्दी संस्था, "दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा" जिसकी स्थापना महात्मा गाँधी जी के द्वारा वर्ष १९१८ में चेन्नै में हुई थी, के शतमानोत्सव वर्ष २०१८ के सर्वप्रथम कार्यक्रम "शतमानोत्सव व्याख्यान श्रृंखला" का शुभारम्भ किया है. सभा द्वारा शतमानोत्सव वर्ष के उपलक्ष्य में इस पूरे वर्ष विभिन्न समारोहों का आयोजन किया जा रहा है. मुख्य समारोह इस वर्ष १७ जून को होना निश्चित है जिसमें प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के भाग लेने की सम्भावना है. जहाँ यार्लगड्डा जी का उद्घाटन भाषण वहाँ उपस्थित लोगों को आनंदित कर गया वहीं यार्लगड्डा जी को स्वयं अभिभूत भी, क्योंकि यार्लगड्डा जी ने बचपन में सभा की प्रारम्भिक परीक्षाएँ पास की थीं. इस अवसर पर "राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता और हिन्दी" विषय पर अपना विद्वता-पूर्ण प्रथम व्याख्यान देते हुए यार्लगड्डा जी ने हिन्दी को राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए आवश्यक बताया. इस संस्था के प्रथम प्रचारक थे महात्मा गाँधी के छोटे पुत्र श्री देवदास गाँधी व इस वर्ग की अध्यक्षता की थी श्रीमती एनी बेसेंट ने. सभा आज सौ वर्ष पश्चात् देश में सबसे बड़ी हिन्दी संस्था है जिसके द्वारा प्रतिवर्ष लगभग १० लाख छात्र हिन्दी परीक्षाओं में भाग लेते हैं.

यह मेरा सौभाग्य है कि सभी प्रियजनों की शुभकामनाओं से मण्डित, साहित्य अकादमी म.प्र. के अखिल भारतीय वीर सिंह देव पुरस्कार से सम्मानित एवं जिसे राष्ट्रपति भवन के पुस्तकालय में भी स्थान दिया गया है, मेरे उपन्यास "कैकेयी चेतना-शिखा" का तीसरा संस्करण प्रकाशनाधीन है.

२१ जून से कैनेडा में ग्रीष्म ऋतु का शुभागमन हो चुका है. सूर्य की प्रखर किरणें कैनेडावासियों को आनन्दित कर रही हैं. तरु पल्लवों की हरीतिमा ने तरुओं को ढक-सा दिया है. धरती ने भी जहाँ-तहाँ हरीतिमा की चादर ओढकर उस पर रंग-बिरंगे फूलों की चुनरी ओढ़ ली है. कैनेडावासियों के लिए ग्रीष्म ऋतु का आगमन किसी एक दीर्घकालीन महोत्सव से कम नहीं होता. स्कूल, कॉलेज आदि जुलाई, अगस्त में ग्रीष्मावकाश हेतु बंद हो जाते हैं. अत: इस दौरान बच्चे, जवान एवं वृद्ध सभी मौज-मस्ती के अन्दाज़ में मस्त रहते हैं.

ग्रीष्म ऋतु आप सबके हृदय-हिन्डोले को झुला-झुला आनंदित करे, इसी मंगल-कामना के साथ - सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

वंदे मातरम्

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय

वंदे मातरम्, वंदे मातरम्
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्।
शस्य श्यामलाम् मातरम्।। वंदे मातरम्।।
शुभ्र ज्योत्सना पुलकित यामिनीम्।।
सुहासिनी सुमधुर भाषिणी।
सुखदां वरदां मातरम्।।
वंदे मातरम्।
त्रिंशत्कोटि कंठ कल-कल निनाद कराले,
द्वित्रिंशत्कोटि भुजेधृति स्वर कर वाले।
के बेले मा तुमी अबले,
बहुबल धारणीम् नमामि तारणीम्।
रिपुदल वारणीम् मातरम्।। वंदे मातरम्।।

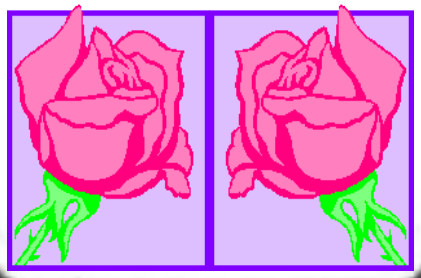

भारत भारत है, इंडिया नहीं

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी

भारतवर्ष के लिए इंडिया नाम भी प्रयुक्त किया जाता है। विदेशी लोग तो प्राय: इंडिया शब्द का ही प्रयोग करते हैं किंतु समझ में नहीं आता कि भारतीय लोग इंडिया का प्रयोग क्यों करते हैं? वास्तव में भारत के लिए इंडिया ही नहीं हिंदुस्तान अर्थात हिंदुओं की भूमि भी प्रयुक्त होता है जो अरब और ईरान में प्रचलित हुआ। प्राचीन काल में यह भारतवर्ष कहलाता था जिसका लघु रूप भारत हो गया जो आधुनिक युग में प्रचलित है। वैदिक काल में इसे आर्यावर्त, जंबूद्वीप और अजनाभ देश के नाम से भी जाना जाता था जिसमें पाकिस्तान, बंगलादेश, बर्मा आदि कई देश सम्मिलित थे।। भारत स्वदेशी और वास्तविक नाम है तो इंडिया शब्द हिंदिका शब्द से बना है जो पश्चिम अथवा यूरोप से होता हुआ आया है। वस्तुत: यह आयातित शब्द है जिसमें विदेशी भाषा अँग्रेज़ी और अँग्रेज़ी मानसिकता छाई हुई मिलती है। हिंदुस्तान फारस और अरब से हो कर आया है। मध्य काल में यह 'हिंदुस्तानी' नाम गंगा-जमुनी तहज़ीब का प्रतीक हो गया जिसे मुगलों ने कहना प्रारम्भ किया था। भारत केवल भूखंड का नाम नहीं वरन इस देश की संस्कृति, समाज और परम्परा से जुड़ा हुआ है। भारत के संविधान में इस देश का आधिकारिक नाम है।

वास्तव में भारत नाम का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद में पुरू, यदु, तुरवश, द्रुहयु और अनु पाँच मुख्य आर्यजन के नाम आते हैं। इनमें पुरुओं की तीन शाखाएँ हुईं – भारत, तृत्सु और कुशिक। इन्हीं भरत राजाओं की वजह से भारत नाम पड़ा। इनमें दिवोदास और उसका पुत्र सुदास ऋग्वैदिक काल के प्रसिद्ध राजा हुए जिन्होंने जनपदों के छोटे-छोटे राजाओं या राजकों को संगठित करने का कार्य किया। इस तरह 'भारतों' के नाम से भारत नाम पड़ा। ऋग्वेद के प्राचीनतम ऋषि विश्वामित्र अपनी एक ऋचा में इंद्र से प्रार्थना करते हैं –

य इमे रोदसी उभे अहभिन्द्रम तुषट्व:।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रहमेदं भारतं जनं॥ (३.५३.१२)

अर्थात हे कुशिक प्रभो, ये जो दोनों आकाश और पृथ्वी हैं, इनके धारक इंद्र की मैंने स्तुति की है। स्तोता विश्वामित्र का यह स्तोत्र भारतजन की रक्षा करता है।

इसी प्रकार शकुंतला और राजा दुष्यंत के पुत्र भरत का नाम भी जोड़ा जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी माना जाता है कि यह नाम मनु के वंशज ऋषभ देव के पुत्र सम्राट भरत के नाम से पड़ा है जिसका उल्लेख श्रीमद्भगवत पुराण में मिलता है। भारत शब्द 'भा+रत' के योग से बना है जिसका अर्थ है आंतरिक प्रकाश में लीन।

प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में 'सप्तसिंधु' नाम भी कई बार आया है। इसका प्रयोग क्षेत्र-विस्तार के संदर्भ में हुआ है। यह अनेक जनपदों का मिला-जुला नाम है जिसका भूभाग गंगा से ले कर सिंधु नदी घाटी और उत्तर में हिमालय से ले कर दक्षिण में राजस्थान तथा गुजरात तक फैला हुआ है। ऋग्वेद में दो ऋचाओं (१०.७५.५.६) में उन्नीस नदियों का उल्लेख मिलता है जिनसे इस क्षेत्र की सिंचाई होती थी। एक ऋचा (१.३५.८) में सोने की आँखों वाले सविता देव (हिरण्याक्ष: सविता देव:) को सप्तसिंधु की संज्ञा दी गई है। यही सप्तसिंधु देश का पर्याय है, किंतु भारत तो कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से मिज़ोरम तक फैला हुआ है। हमारी पहचान तो

भारतीयता के आधार पर है। इसी प्रकार आदि काल में 'राष्ट्र' और 'देश' अर्थात् भारत एक ही पर्याय के रूप में प्रयुक्त होते थे। ऋग्वेद में ही राष्ट्र शब्द भारत के संदर्भ में मिलता है – त्वत राष्ट्र माँ आधी भ्रंशत (१०.१७३.१)। इस पूरी ऋचा की व्याख्या की जाए तो यह भाव मिलता है - हे राजन! हमारे राष्ट्र का तुम्हें स्वामी बनाया गया है। तुम हमारे राजा हो। तुम नीति, अचल और स्थिर हो कर रहो। सारी प्रजा तुम्हें चाहे। तुमसे राष्ट्र नष्ट न हो पावे। इस प्रकार भारत को कई नामों से अभिहित किया गया है, लेकिन भारत का प्रयोग ही अतीतकालीन, प्राकृतिक और स्वाभाविक है।

आज के परिप्रेक्ष्य में भारत और इंडिया का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो भारत नाम भारत की धरती का होने के कारण स्वाभाविक और औचित्यपूर्ण है, क्योंकि यह भारतीय संस्कृति और परम्परा से जुड़ा हुआ है। इंडिया में पाश्चात्य संस्कृति की गंध आती है। भारत राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के मंत्र की पूजा करता है जबकि इंडिया की नज़र में राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता एक पुराणपंथी अवधारणा है। यह राष्ट्रवाद को पंथनिरपेक्ष अर्थात सेकुलर नहीं मानता और इसी कारण राष्ट्रवाद को प्रगतिशील भी नहीं मानता। भारत स्वतंत्रता का प्रतीक है तो इंडिया गुलामी का। भारत में देश की अखंडता और एकात्मकता के बीज अंकुरित हैं जबकि इंडिया में विभाजन की जड़ों को पकड़ने की कोशिश होती है। भारतवासियों के लिए भारत उनकी माता है और वे अपने को उसका पुत्र मानते हुए उसका नमन करते हैं – पृथिव्या पुत्रोह, जबकि इंडिया हमारे भीतर सम्बंधों में परायापन की भावना पैदा करता है। भारत आर्य, द्रविड़, नाग, यक्ष, किन्नर, किरात, मंगोल, मुस्लिम, ईसाई, पारसी आदि अनेक जातियों को अपने सीने से चिपका कर उन्हें स्नेह, प्रेम और वात्सल्य की छाया देता है और इंडिया एवं हिंदुस्तान इन जातियों को अलग-अलग करने के लिए उकसाता है। भारत हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख आदि मतों को एक ही वृक्ष की शाखाएँ मानता है जबकि इंडिया इन्हें अलग-अलग समुदाय और उससे भी आगे बढ़ कर उन्हें संप्रदाय मानता है। भारत हमें अहिंसा पर विश्वास करने और उसका अनुगमन करने का पाठ पढ़ाता है जबकि इंडिया हिंसा की ओर धकेलता है। भारत ऋषि-मुनियों का देश लगता है जबकि इंडिया विलासियों और हिप्पियों का देश लगता है। भारत हमें साधना की ओर प्रोत्साहित करता है तो इंडिया साधनों के पीछे पड़ा रहता है। भारत सौहार्द्र, मैत्री, त्याग और वसुधैव कुटुम्बकम् का पाठ सिखाता है जबकि इंडिया इनसे हमें दूर रखने का प्रयास करता है। भारतीय दर्शन, भारतीय संस्कृति, भारतीय परम्परा, भारतीय साहित्य, भारतीय जीवन, भारतीय पुराण और इतिहास, भारत की विकासशीलता आदि भारत की अस्मिता और पहचान है जबकि इंडिया इन सबको अपने भीतर समेट नहीं पाता। एक अन्य बात उल्लेखनीय है कि सत्यमेव जयते हमारे देश भारत का प्रतीक वाक्य है जो मुंडक उपनिषद से उद्धृत है और यह वाक्य भारतीय विचारधारा को ही उद्घाटित करता है। भारत पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों की पूजा करता है, इसीलिए वह गाय और तुलसी को माता की पदवी देता है। वह गाय की रक्षा करता है जबकि इंडिया उसके भक्षण के लिए लालायित रहता है। भारत गाँवों के अतिरिक्त शहरों में भी निवास करता है जबकि इंडिया केवल शहरों में रहता है। भारत अमीरों और गरीबों को समान नज़र से देखता है जबकि इंडिया अमीरों को ही निहारा करता है। भारत भारतीय वस्त्र, खान-पान और जीवन-शैली की पहचान है और इंडिया विदेशी वस्त्र, खान-पान और जीवन-शैली को अपनाने में अपनी शान समझता है। भारत अपनी भाषा हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं को अपने भीतर आत्मसात् किए हुए है जबकि इंडिया अँग्रेज़ी और अँग्रेज़ियत के गीत गाता रहता है।

भारत के विकास और आधुनिकीकरण के लिए इधर नई-नई परियोजनाएँ बनाई जा रही हैं और उन्हे मेक इन इंडिया, स्किल इंडिया, स्टार्ट-अप इंडिया, डिजिटल इंडिया आदि अँग्रेज़ी के जोरदार नारों से सुसज्जित किया जा रहा है। अँग्रेजी में दिए गए इन नारों से इंडिया के विकसित और आधुनिक होने की आशा तो है लेकिन यह पश्चिमीकरण, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण से अवश्य प्रभावित होंगे। ऐसे इंडिया में विलासिता,

भौतिकता, स्वार्थपरकता और परायापन के साम्राज्य की भी सम्भावना है। साथ-साथ भारतीयता, अध्यात्मिकता, अपनापन और सांस्कृतिक चेतना के दर्शन न होने की पूरी-पूरी आशंका है तथा ग्रामीण जीवन के प्रति संवेदनहीनता के संकेत भी मिल सकते हैं। हिन्दी अथवा भारतीय भाषाओं में ये नारे हमारी मानसिकता में परिवर्तन लाने में सहायक हो सकते है जो भारत को विकसित और आधुनिक राष्ट्र बनाने में सहायक हो सकते हैं।

अत: भारत को भारत ही रहने दो, इंडिया नहीं। भारत नाम में ही महानता है और यही हमारी पहचान है। यही हमारी अस्मिता है। जय भारत।

चले जाना फिर

बेनू सतीश कान्त

आओ उन पलों में
जी तो लो
जो मैंने तुम्हारे लिए
सजाए हैं
चले जाना फिर
कुछ अपनी
कह जाना
कुछ मेरी भी
सुन जाना
चले जाना फिर
तुम्हें महसूस
तो कर लूँ
साँसों को सँभाल लूँ
चले जाना फिर
थोड़ा रुक तो लो
खुद को खुद
से बाँट तो लो
उन पलों को
जी तो लो
चले जाना फिर
मुझे सँभल जाने दो
उन पलो को
जी तो लो
जो मैंने तुम्हारे लिए
सजाए हैं
चले जाना फिर.

चन्द्रशेखर आज़ाद होने का अर्थ

(23 जुलाई, भारतीयता की प्रतिमूर्ति, महान् वीर आज़ाद जी के जन्मदिवस पर विशेष - संपादक)

सुशील कुमार शर्मा

महान क्रांतिकारी चन्द्रशेखर "आज़ाद" का जन्म २३ जुलाई १९०६ को श्रीमती जगरानी देवी व पण्डित सीताराम तिवारी के यहाँ भाबरा (झाबुआ मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे पण्डित रामप्रसाद "बिस्मिल" की हिन्दुस्तान रिपब्लिकन ऐसोसियेशन (HRA) में थे और उनकी मृत्यु के बाद नवनिर्मित हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी/ऐसोसियेशन (HSRA) के प्रमुख चुने गये थे। मात्र १४ वर्ष की आयु में अपनी जीविका के लिये नौकरी आरम्भ करने वाले आज़ाद ने १५ वर्ष की आयु में काशी जाकर शिक्षा फिर आरम्भ की और लगभग तभी सब कुछ त्यागकर गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन में भाग लिया।

१९२१ में मात्र तेरह साल की उम्र में उन्हें संस्कृत कॉलेज के बाहर धरना देते हुए पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। पुलिस ने उन्हें ज्वाइंट मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया। जब मजिस्ट्रेट ने उनका नाम पूछा, उन्होंने जवाब दिया - आजाद। मजिस्ट्रेट ने पिता का नाम पूछा, उन्होंने जवाब दिया - स्वाधीनता। मजिस्ट्रेट ने तीसरी बार घर का पता पूछा, उन्होंने जवाब दिया - जेल।

उनके जवाब सुनने के बाद मजिस्ट्रेट ने उन्हें पन्द्रह कोड़े लगाने की सजा दी। हर बार जब उनकी पीठ पर कोड़ा लगाया जाता वे महात्मा गाँधी की जय बोलते। थोड़ी ही देर में उनकी पूरी पीठ लहू-लुहान हो गई। उस दिन से उनके नाम के साथ 'आजाद' जुड़ गया।

आजाद को मूलत: एक आर्यसमाजी साहसी क्रांतिकारी के रूप में ही ज़्यादा जाना जाता है। यह बात भुला दी जाती है कि रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाकुल्लाह खान के बाद की क्रांतिकारी पीढ़ी के सबसे बड़े संगठनकर्ता आजाद ही थे। भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव सहित सभी क्रांतिकारी उम्र में कोई ज्यादा फ़र्क न होने के बावजूद आजाद की बहुत इज्जत करते थे।

उन दिनों भारतवर्ष को कुछ राजनीतिक अधिकार देने की पुष्टि से अँग्रेजी हुकूमत ने सर जॉन साइमन के नेतृत्व में एक आयोग की नियुक्ति की, जो "साइमन कमीशन" कहलाया। समस्त भारत में साइनमन कमीशन का ज़ोरदार विरोध हुआ और स्थान–स्थान पर उसे काले झण्डे दिखाए गए। जब लाहौर में साइमन कमीशन का विरोध किया गया तो पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर बेरहमी से लाठियाँ बरसाईं। पंजाब के लोकप्रिय नेता लाला लाजपतराय को इतनी लाठियाँ लगीं कि कुछ दिन के बाद ही उनकी मृत्यु हो गई। चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह और पार्टी के अन्य सदस्यों ने लाला जी पर लाठियाँ चलाने वाले पुलिस अधीक्षक सांडर्स को मृत्युदण्ड देने का निश्चय कर लिया।

चन्द्रशेखर "आज़ाद" ने देश भर में अनेक क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लिया और अनेक अभियानों का प्लान, निर्देशन और संचालन किया। पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल के काकोरी कांड से लेकर शहीद भगत सिंह के सौंडर्स व संसद अभियान तक में उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है। काकोरी काण्ड, सौण्डर्स हत्याकाण्ड व बटुकेश्वर दत्त और भगत सिंह का असेम्बली बम काण्ड उनके कुछ प्रमुख अभियान रहे हैं।

देशप्रेम, वीरता और साहस की एक ऐसी ही मिशाल थे शहीद क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद। २५ साल की उम्र में भारत माता के लिए शहीद होने वाले इस महापुरुष के बारें में जितना कहा जाए उतना कम है। अपने पराक्रम से उन्होंने अँग्रेजों के अंदर इतना खौफ़ पैदा कर दिया था कि उनकी मौत के बाद भी अँग्रेज उनके मृत

शरीर को आधे घंटे तक सिर्फ देखते रहे थे, उन्हें डर था कि अगर वह पास गए तो कहीं चन्द्रशेखर आजाद उन्हें मार ना डालें।

एक बार भगतसिंह ने बातचीत करते हुए चन्द्रशेखर आज़ाद से कहा, 'पंडित जी, हम क्रान्तिकारियों के जीवन-मरण का कोई ठिकाना नहीं, अत: आप अपने घर का पता दे दें ताकि यदि आपको कुछ हो जाए तो आपके परिवार की कुछ सहायता की जा सके।' चन्द्रशेखर सकते में आ गए और कहने लगे, 'पार्टी का कार्यकर्ता मैं हूँ, मेरा परिवार नहीं। उनसे तुम्हें क्या मतलब? दूसरी बात - उन्हें तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं है और न ही मुझे जीवनी लिखवानी है। हम लोग नि:स्वार्थ भाव से देश की सेवा में जुटे हैं, इसके एवज़ में न धन चाहिए और न ही ख्याति।

२७ फरवरी १९३१ को जब वे अपने साथी सरदार भगतसिंह की जान बचाने के लिये आनन्द भवन में नेहरू जी से मुलाकात करके निकले तब पुलिस ने उन्हें चन्द्रशेखर आज़ाद पार्क (तब ऐल्फ्रैड पार्क) में घेर लिया। बहुत देर तक आज़ाद ने जमकर अकेले ही मुक़ाबला किया। उन्होंने अपने साथी सुखदेवराज को पहले ही भगा दिया था। आख़िर पुलिस की कई गोलियाँ आज़ाद के शरीर में समा गईं। उनके माउज़र में केवल एक आख़िरी गोली बची थी। उन्होंने सोचा कि यदि मैं यह गोली भी चला दूँगा तो जीवित गिरफ्तार होने का भय है। अपनी कनपटी से माउज़र की नली लगाकर उन्होंने आख़िरी गोली स्वयं पर ही चला दी। गोली घातक सिद्ध हुई और उनका प्राणांत हो गया। पुलिस पर अपनी पिस्तौल से गोलियाँ चलाकर "आज़ाद" ने पहले अपने साथी सुखदेव राज को वहाँ से सुरक्षित हटाया और अंत में एक गोली बचने पर अपनी कनपटी पर दाग़ ली और "आज़ाद" नाम सार्थक किया।

२७ फरवरी, १९३१ को चन्द्रशेखर आज़ाद के रूप में देश का एक महान क्रान्तिकारी योद्धा देश की आज़ादी के लिए अपना बलिदान दे गया, शहीद हो गया। उनको श्रद्धांजलि देते हुए कुछ महान व्यक्तित्व के कथन निम्न हैं -

चंद्रशेखर की मृत्यु से मैं आहत हूँ। ऐसे व्यक्ति युग में एक बार ही जन्म लेते हैं। फिर भी हमें अहिंसक रूप से ही विरोध करना चाहिये। - महात्मा गाँधी

चंद्रशेखर आज़ाद की शहादत से पूरे देश में आज़ादी के आंदोलन का नये रूप में शंखनाद होगा। आज़ाद की शहादत को हिंदोस्तान हमेशा याद रखेगा। - पंडित जवाहरलाल नेहरू

देश ने एक सच्चा सिपाही खोया। - मुहम्मद अली जिन्ना

"पण्डितजी की मृत्यु मेरी निजी क्षति है। मैं इससे कभी उबर नहीं सकता।" - महामना मदन मोहन मालवीय

किसी कवि की भाव पूर्ण श्रद्धांजलि उस महान क्रांतिकारी के लिए -

जो सीने पर गोली खाने को आगे बढ़ जाते थे,
भारत माता की जय कह कर फाँसी पर जाते थे।
जिन बेटों ने धरती माता पर कुर्बानी दे डाली,
आजादी के हवन कुँड के लिये जवानी दे डाली
उनका नाम जुबा पर लो तो पलकों को झपका लेना
उनको जब भी याद करो तो दो आँसू टपका लेना।

ऐ मेरे वतन के लोगों

रामचंद्र द्विवेदी 'प्रदीप'

ऐ मेरे वतन के लोगों तुम खूब लगा लो नारा
ये शुभ दिन है हम सब का लहरा लो तिरंगा प्यारा
पर मत भूलो सीमा पर वीरों ने है प्राण गँवाए
कुछ याद उन्हें भी कर लो जो लौट के घर ना आए
ऐ मेरे वतन के लोगों ज़रा आँख में भर लो पानी
जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो कुरबानी
जब घायल हुआ हिमालय ख़तरे में पड़ी आज़ादी
जब तक थी साँस लड़े वो फिर अपनी लाश बिछा दी
संगीन पे धर कर माथा सो गए अमर बलिदानी
जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो कुरबानी
जब देश में थी दीवाली वो खेल रहे थे होली
जब हम बैठे थे घरों में वो झेल रहे थे गोली
क्या लोग थे वो दीवाने क्या लोग थे वो अभिमानी
जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो कुरबानी
कोई सिख कोई जाट मराठा कोई गुरखा कोई मदरासी
सरहद पर मरनेवाला हर वीर था भारतवासी
जो खून गिरा पर्वत पर वो खून था हिंदुस्तानी
जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो कुरबानी
थी खून से लथ-पथ काया फिर भी बंदूक उठाके
दस-दस को एक ने मारा फिर गिर गए होश गँवा के
जब अंत-समय आया तो कह गए के अब मरते हैं
खुश रहना देश के प्यारों अब हम तो सफ़र करते हैं
थे धन्य जवान वो अपने
थी धन्य वो उनकी जवानी
जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो कुरबानी
जय हिंद जय हिंद की सेना
जय हिंद, जय हिंद, जय हिंद

प्रत्यक्ष

पद्मश्री डॉ नरेन्द्र कोहली

कुंती को बहुत प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। कर्ण अभी भी दूर ही था कि उसके आने का पता लग गया। वह ब्राह्मणों के एक झुंड में घिरा हुआ आ रहा था, जो 'महाराज' कर्ण और 'अंगराज' कर्ण का जयजयकार कर रहा था।....कुंती को लगा कि सहसा ही गंगातट का वह सात्विक वातावरण किसी राजप्रासाद के गलियारे-सा राजसिक हो गया है। थोड़ी देर पहले तक वहाँ पूर्ण निःस्तब्धता थी और बीच-बीच में जो स्वर उठता भी था, वह गंगा अथवा महादेव शिव के जयजयकार का होता था, अथवा कोई ऐसा मंत्र, कोई ऐसी ऋचा, जो गंगास्नान के ही समान पवित्र होती थी। ये सांसारिक जयघोष तो कर्ण के साथ ही आये थे।....वे याचक ब्राह्मण इस मुहूर्त में गंगातट पर आकर भी ईश्वर का स्मरण नहीं कर रहे थे, वे मनुष्य का जयजयकार कर रहे थे।....उनकी बाध्यता को कुंती समझ सकती थी। उन्हें धन चाहिये था, और यह उन्हें कर्ण के माध्यम से ही प्राप्त होने वाला था। वे तो उसी का जयजयकार करेंगे। मनुष्य की दृष्टि इतनी सीमित है, वह इतनी कम दूरी तक देख सकता है कि उसे केवल प्रत्यक्ष लाभ ही दिखाई पड़ता है।....वे लोग यदि एक-आध प्रहर ईश्वर का जयजयकार करेंगे तो ईश्वर आकाश से दो-चार स्वर्ण मुद्राएँ तो टपका नहीं देगा; किंतु कर्ण का थोड़ा-सा जयघोष कदाचित उन्हें कुछ स्वर्ण अथवा रजत की मुद्राएँ दिलवा देगा।....पर ईश्वर क्यों विमुख करता है याचकों को? क्यों नहीं वह भी कोई ऐसा ही नियम बना देता कि किसी एक निश्चित संख्या में उसका जयजयकार करने पर वह एक स्वर्ण मुद्रा देगा? इससे लोगों में भक्ति-भावना की वृद्धि होगी...

और सहसा कुंती को हँसी आ गई....वे संसार में ईश्वरीय विधान प्रचलित करने की बात नहीं सोच रहीं; वे तो ईश्वर को ही सांसारिक विधान ओढ़ा रही थीं। मनुष्य का मन अपना जयजयकार सुन कर जितना पुलकित होता है, ईश्वर का मन नहीं होता होगा। ईश्वर में अहंकार नहीं है कि वह जयजयकार सुनकर प्रसन्न हो जाये और स्वर्णमुद्राओं की वर्षा कर दे।....वह मनुष्य के शब्दों को नहीं सुनता, उसके मन को देखता है। तृष्णाहीन सात्विक मन की सारी आवश्यकताएँ तो वह स्वयं ही पूरी कर देता है....

कुंती के मन में युधिष्ठिर का चित्र उभरा....उसे न राज्य की इच्छा है, न जयजयकार सुनने की तृष्णा। राजसभा के बाहर उसके आस-पास कितने ब्राह्मण होते हैं। ईश्वर, धर्म तथा भक्ति सम्बंधी कितनी चर्चा होती है, उसके सम्मुख।....किंतु प्रशस्ति केवल ईश्वर की होती है, युधिष्ठिर की नहीं।....कर्ण इस पवित्र गंगा-स्नान और इस दान-दक्षिणा से क्या पायेगा? दान तो वह होता है जो एक हाथ दे तो दूसरे को उसका आभास भी न हो। मन में उसका अहंकार तो आए ही नहीं। दुखी के प्रति संवेदना के कारण, अपना धन उसे देकर, मन एक सात्विक आनंद का अनुभव करे। अपना जयजयकार करवा कर धन देने से तो अहंकार में ही वृद्धि होगी, और अहंकार ही तो सारे कष्टों का, सारे दुखों का मूल है।

कुंती ने अपने चिन्तन को बलात रोका।....कर्ण उसका पुत्र है। पुत्र का यश सुनकर, उसका महत्व देखकर, माँ को प्रसन्न होना चाहिये....और वे हैं कि पुत्र के गुणों में ही दोष निकालने लगी हैं....युधिष्ठिर में सात्विकता है, और कुंती चाहती है कि उसके मन में रजोगुण की वृद्धि हो। कर्ण में राजसिकता है और वे चाहती हैं कि उसमें सात्विकता जागे।....युधिष्ठिर युद्ध करना नहीं चाहता और कुंती की इच्छा है कि वह युद्ध करे। कर्ण युद्ध के लिए आतुर है और कुंती चाहती हैं कि वह युद्ध न करे।

कुंती ने अपने सिर को झटका....वे ऐसा कुछ नहीं चाहतीं। उनकी तो एकमात्र इच्छा है कि युधिष्ठिर धर्म के लिए, अपने सम्मान के लिए युद्ध करे और कर्ण अधर्म के पक्ष से न लड़।....वे चाहती हैं कि नारीत्व का अपमान करने वालों को कठोरतम दण्ड मिले। वे चाहती हैं कि युधिष्ठिर सम्राट बनने के लिए

चाहे न लड़, किंतु द्रौपदी के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए अवश्य खडग उठाये।....वे तो इतना ही चाहती हैं कि उनके पुत्रों को उनका अधिकार मिले और वे परस्पर एक-दूसरे का वध करने के स्थान पर, मिलकर प्रेमपूर्वक रहें।....

उनका मन अपना ताना-बाना बुनता जा रहा था और उनकी आँखें कर्ण को निहार रही थीं। कर्ण ने स्नान किया, सूर्य की उपासना की; और अब वह ब्राह्मणों को दान दे रहा था....कुंती को हँसी आ गई.. जिनको दान दिया जा रहा था, वे दान की कामना में आये तो साथ थे; किंतु दान पाते ही विदा होते जा रहे थे। दान प्राप्त कर लेने के पश्चात, दाता से उनका कोई रागात्मक सम्बंध नहीं रह जाता था। अब दाता के साथ वे याचक नहीं, दाता का अपना पुण्य मात्र था।

अब कर्ण एकदम अकेला था....इसी क्षण की प्रतीक्षा थी कुंती को।....यदि वे संकोच कर गईं और कर्ण विदा हो गया, तो उनकी वही स्थिति होगी, जो वे कल रात अपन स्वप्नों में देखती रही हैं....या यह भी सम्भव है कि कर्ण से मिलने के लिए कोई और आ जाये और कुंती को उससे बात करने के लिए वांछित एकांत न मिले....

कुंती वृक्षों के झुरमुट से निकलकर आगे बढ़ीं और कर्ण के सम्मुख आ गईं।

कर्ण ने आहट पाकर सिर उठाया। सामने खड़ व्यक्ति को वह पहचान नहीं सकता था। एक तो मेघों के आ जाने के कारण सूर्य का प्रकाश अपनी पूर्ण क्षमता के साथ पृथ्वी पर पहुँच नहीं पा रहा था; दूसरे उस व्यक्ति ने अपने उत्तरीय में स्वयं को पूर्णतः छिपा रखा था।

'एक याचक!' कुंती ने धीरे से कहा, 'मुझे महाराज से एकांत में कुछ माँगना है।'

कर्ण को कुछ आश्चर्य हुआ। कंठ नारी का-सा था किंतु उसकी ऊँचाई पुरुष होने का-सा भ्रम उत्पन्न कर रही थी....कौन है यह याचक?...किंतु एकांत में क्यों?....सम्भवतः कोई स्वाभिमानी व्यक्ति है, जिसके लिए दान लेने का निषेध हो, किंतु दान के बिना उसका कोई काम रुक रहा हो।....

'बोलो, क्या चाहिये? यहाँ एकांत ही तो है।' कर्ण ने कहा।

'अभी एकांत है, किंतु किसी भी क्षण कोई आ सकता है। सम्भव है कि अपनी बात कहने में मुझे कुछ समय लग जाए।' कुंती ने कहा, 'मुख्य मार्ग से हटकर यदि आप इधर वृक्षों के पीछे आ जाएँ।'

कर्ण क्षण-भर के लिए ठिठका।....कल कृष्ण के निमंत्रण पर भी वह ठिठका था। कहीं कोई षडयंत्र तो नहीं रचा जा रहा! यद्यपि वह जानता था कि क्षत्रियों में अपने शत्रु को चुनौती देकर, सम्मुख युद्ध में मारने के प्रचलन है....फिर भी स्वयं दुर्योधन ने भीम को विष खिला दिया था और लाक्षागृह में पांडवों को जलाकर मारने का प्रयत्न किया था....ऐसे में यह तो नहीं सोचा जा सकता था कि कोई दूसरा व्यक्ति इस प्रकार का षडयंत्र नहीं कर सकता। सम्भवतः उन वृक्षों के पीछ किसी ने भृतक हत्यारे छिपा रखे हों और इस नारी कंठ वाले पुरुष को, उसे बुलाने के लिए भेजा हो!

कर्ण ने अपनी सारी आशंकाओं को झटक दिया। हस्तिनापुर में गंगा के निकट इस प्रकार के षडयंत्र सम्भव नहीं है। और फिर आवश्यक होने पर निःशस्त्र कर्ण भी दस-बीस शस्त्रधारियों से अकेला भी भिड़ सकता है....उन वृक्षों के पीछे कोई पूरी वाहिनी तो छिपी नहीं होगी।

कर्ण, कुंती के दिखाये मार्ग पर चला आया....एक निभृत स्थान था।....सम्भवतः घाट पर यहाँ का शब्द सुना तो जा सकता था, किंतु सहज ही देखा नहीं जा सकता था।

'कौन हो तुम?"

कुंती का उत्तरीय उनके सिर और चेहरे से हटता हुआ, कंधों पर आ गया।

'ओह आप!' कर्ण के मन में जैसे ज्वार उठा; किंतु उसे अपना संकल्प विस्मृत नहीं हुआ था। उसे तनिक भी कोमलता नहीं दिखानी थी। उसे तो कठोर बनना था....क्रूरता की सीमा तक....

'मैं याचक बनकर आई हूँ, अंगराज!' कुंती ने कहा, 'इसलिए मुझे याचिका की पूर्वपीठिका स्पष्ट करनी होगी।'

कर्ण के मन में आया कि वह तत्काल वहाँ से चल दे। वह जानता था कि कुंती की याचना कृष्ण के आग्रह से भिन्न नहीं होगी। वह पुनः उसी द्वन्द्व में पड़ना नहीं चाहता था....किंतु अपने सामने खड़ी उस नारी को, एक साधारण याचक मान झटककर वह जा भी नहीं सकता था....आज तक उसने जिस कुंती को देखा था, वह पांडवों की माता थी, उसके शत्रुओं की माता।....आज जो कुंती उसके सम्मुख खड़ी थी, वह उसकी अपनी जननी थी। उसने कुंती को अगणित बार देखा था; किंतु अपनी जननी को तो वह पहली ही बार देख रहा था।....

कर्ण मौन खड़ा था। कुंती उसके बोलने की प्रतीक्षा दीर्घकाल तक नहीं कर सकती थीं। बोलीं, 'राधेय! तम्हारा पालन-पोषण अधिरथ के घर में हुआ है, किंतु क्या तुम जानते हो कि तुम्हारी जननी मैं हूँ? तुमने मेरी कुक्षि से जन्म लिया है, पुत्र!'

कुंती कल्पना कर रही थीं कि यह सूचना पाते ही वह दौड़ कर आतुरतापूर्वक उनसे लिपट जायेगा और कदाचित कुछ रोष जताते हुए यह भी कहेगा कि आज तक उससे यह सम्बन्ध छिपाया क्यों गया था?....या फिर सम्भव है कि वह क्रुद्ध होकर फट पड़ कि जब वे जानती थीं कि वह उनका पुत्र है और उनके इतने निकट है, तो उन्होंने उसे इतना तड़पाया क्यों?

किंतु कर्ण मौन ही नहीं, निस्पंद खड़ा उन्हें देखता रहा।

कुंती अवाक रह गई। वे अब ऐसा क्या कहतीं, जिससे उत्तेजित होकर, कर्ण कुछ बोल पड़ता - पक्ष में, विपक्ष में, प्रसन्नता में, क्रोध में। ब्रह्मास्त्र तो वे पहले ही छोड़ चुकी थीं। अब छोटे-मोटे शस्त्रास्त्रों का क्या काम?....जब कर्ण पर्याप्त समय तक कुछ नहीं बोला, तो कुंती ही पुनः बोलीं, 'तुम कुछ बोलते क्यों नहीं, पत्र? क्या तुम्हारे लिए यह सूचना कोई अर्थ नहीं रखती? क्या तुम अपनी खोई हुई माता और भाइयों को पाकर प्रसन्न नहीं हो?'

'यह सब कुछ कृष्ण मुझे पहले ही बता चुके हैं।' कर्ण सर्वथा ऊष्मारहित स्वर में बोला, 'किंतु मैं सोचता हूँ कि जो सूचना आप सबने वर्षों तक मुझसे छुपाये रखी, अब अकस्मात ही वह इस प्रकार क्यों उदघाटित की जा रही है?' उसने रुककर कुंती की ओर देखा, 'क्या महत्व है इस सूचना का मेरे लिए? इससे मुझे यह ज्ञात नहीं हुआ कि मेरे माता-पिता कौन हैं। इससे मुझे ज्ञात हुआ कि मेरी इस दुर्दशा के लिए उत्तरदायी कौन है। कौन है वह, जिसने अपने मिथ्या सामाजिक सम्मान के लिए एक नवजात शिशु के सुख-सुविधा, कीर्ति-यश की बात तो जाने दीजिये, उसके जीवन की भी चिन्ता नहीं की। बहा दिया उसे नदी की धारा में, डूबने के लिए, मरने के लिए। आज मुझे यह ज्ञात नहीं हुआ कि मुझे जन्म किसने दिया, मुझे यह ज्ञात हुआ कि मेरी हत्या का पयत्न किसने किया।'

इस बार कुंती की प्रतिक्रिया, कर्ण की अपेक्षा के सर्वथा प्रतिकूल हुई। सोचा था कि कुंती लज्जित होंगी, उनकी वाणी लड़खड़ा जायेगी, उन्हें शब्द नहीं मिलेंगे, सम्भव है कि नयनों से अश्रु टपकने लगें। कदाचित वे पश्चाताप प्रकट करें। सम्भवतः क्षमा माँगें....किंतु कुती का चेहरा तो क्षोभ के मारे कठोर ही नहीं, कुछ प्रदीप्त भी हो उठा, 'तो खडग निकालो। कर दो मेरा वध। प्रतिशोध नहीं लोगे? वैसे भी तुम्हारी तो हत्यारिणी हूँ मैं। माता तो मैं उनकी हूँ, जिन्हें आजीवन पीड़ित, अपमानित और वंचित करना, तुम्हारे

अस्तित्व का एकमात्र लक्ष्य रहा है। मरा वध कर दोगे, तो उन्हें पीड़ा भी होगी, वे वंचित भी होंगे और स्वयं को अपमानित भी अनुभव करेंगे। उससे तुम्हें अपार हर्ष होगा। तुम्हारे मित्रों को स्वर्गिक आनन्द मिलेगा।'

'मेरी शूरवीरता एक असहाय वृद्धा की हत्या कर गौरवान्वित नहीं होगी।' कर्ण का मन वहाँ से तत्काल चल देना चाहता था, बिना किसी चर्चा और संवाद के; किंतु उसके पग धरती में जैसे कीलित हो गये थे। कुंती की पूरी बात सुने बिना, उनकी भर्त्सना कर, उन्हें अनुत्तरित किये बिना चले जाने में क्या सुख था!

'तुम्हारी शूरवीरता तो केवल एक असहाय युवती को सार्वजनिक रूप से निर्वस्त्र कर गौरवान्वित होती है ना!' कुंती की आँखों में से जैसे कोई हिंस जीव झाँक रहा था, 'अपनी वीरता का अधिक बखान मत करो। तुम नहीं जानते थे कि मैं तुम्हारी जननी हूँ, किंतु मैं जानती थी कि मैंने तुम्हें जन्म दिया है....और अपने पुत्र की वीरता देख-देखकर, एकांत में सिर पटक-पटककर वर्षो रोती रही हूँ मैं?....'

कर्ण की आँखें आश्चर्य से फैलकर कुछ और बड़ो हो गईं। इस माता को अपने पुत्र....कर्ण जैसे पुत्र की वीरता पर गर्व नहीं है? वह अपने पुत्र के कृत्यों से पीड़ित होती रही है?....कर्ण की आँखों में दमित आक्रोश पैदा हुआ....वे लोग आज तक उसका तिरस्कार किसी और पद्धति से करते रहे थे। आज इस नई पद्धति का आविष्कार किया है इन्होंने।

'वह मेरा प्रतिशोध था।' कर्ण का स्वर पूर्णतः आश्वस्त था, 'उसने अपने स्वयवर में मुझे सूतपुत्र कहा था।'

'वह तो यही जानती थी कि तुम अधिरथ के पुत्र हो, तो वह तुम्हें ऋषिपुत्र कैसे कह देती?' कुंती के स्वर में झंझावात का-सा वेग था, 'महाराज धृतराष्ट्र जब संजय को 'सूतपुत्र' कहते हैं, तो संजय उनके परिवार की स्त्रियों को अपमानित करने पर उतारू नहीं हो जाता।'

'धृतराष्ट्र संजय का सम्मान करते हैं; किंतु उसने मेरा अपमान करने के लिए वह सब कहा था। यदि वह मेरा अपमान न करती तो मैं उसका अनादर क्यों करता?' कर्ण की वाणी का बल क्षीण हो रहा था, 'अन्यथा मैं स्त्रियों का बहुत सम्मान करता हूँ।'

'प्रतिशोध ही लेना था तो वीर पुरुषों के समान लेते। निकाल लेते खडग और उसके रक्षकों का सम्मुख युद्ध में वध कर, उसका हरण कर लाते।' कुंती बोली, 'यह प्रतिशोध है तुम्हारा! राजसभा में बुलाकर, उसके वीर पतियों को धर्म के बंधन में बाँध, एक असहाय स्त्री के नारीत्व से प्रतिशोध!' कुंती की दृष्टि कर्ण पर लक्ष-लक्ष धिक्कारों की वर्षा कर रही थी, 'और जानती हूँ कितना सम्मान करते हो तुम स्त्री का। जो स्त्री तुम्हारे विरुद्ध कहे, तुम्हारी कामनापूर्ति में विध्न बने, उसे तुम वेश्या कह कर पुकारते हो। उसे सार्वजनिक रूप से निर्वस्त्र कर, उसकी पीड़ा से आनन्दित होते हो, उसके अपमान से गौरवान्वित होते हो।' कुंती के स्वर में जैसे कोई तरल तप्त धातु बह रही थी, 'अपने अपमान का दुख है तुमको, जो अपमान तुम लोगों ने पांचाली का किया है, जो अपमान तुम लोगों ने पांडवों का किया है....द्यूतसभा में उनके वस्त्र उतरवा लिए और उन महावीरों के सम्मुख उनकी पत्नी को 'वेश्या' कहकर, उसे नग्न करने का प्रयत्न किया, उसे रति निमंत्रण दिया।....उसे दूसरा पति चुन लेने को कहा ...उस अपमान से बड़ा अपमान किया था पांचाली ने तुम्हारा? ...तुम्हारे उस नीच कर्म को देखकर भी क्या प्रतिक्रिया थी पांडवों की? उन्होंने युद्ध की प्रतिज्ञा की, धर्म की प्रतिज्ञा की और चुपचाप चले गये उठकर। यदि वे भी धर्म को भूलकर, अपने अपमान का प्रतिशोध लेने को तत्पर होते, अपने शस्त्र उठा लेते, तो देखती मैं तुम लोगों की वीरता।....और तुम्हें यह भी सूचित कर दूँ, महावीर! कि उसने तुम्हारा अपमान नहीं किया था, केवल तुमसे विवाह करने की अनिच्छा प्रकट की थी। यदि यह अपमान था तो तुम जानते ही होगे कि प्रत्येक स्वयंवर में नारी, सम्मान तो केवल एक ही पुरुष का करती है, शेष सबका तो अपमान ही होता है।'

'यदि पांचाली मुझसे विवाह नहीं करना चाहती थी, तो यही कहती। उसने जाति की बात क्यों कही?' कर्ण का दमित आक्रोश फिर से उफन आया था; किंतु उसकी वाणी में विश्वास का बल नहीं था।

'इसलिए कि वह यह नहीं कह सकती थी कि वह उस आततायी से विवाह नहीं करेगी, जो निर्दोष लोगों को उनकी निद्रावस्था में जलाकर मार डालने का षडयंत्र करता है, करवाता है; और ऐसे षडयंत्र करने वालों का साथ देता है।'

उस कांड के लिए मुझसे बड़ा दोषी दुर्योधन है। पांचाली ने उसे क्यों नहीं रोका?' कर्ण कुछ और बिफरकर बोला, 'क्यों नहीं लगाया उस पर आरोप? मेरी ही जाति....!'

'चुप रहो तुम! कुंती ने उसे डाँटा, 'जैसे माँ अपने नन्हें बच्चे को डाँटती है, 'तुम आज तक यही करते आये हो। केवल अपनी रट लगाये रहते हो, दूसरे की सुनते नहीं। अपना ही पक्ष जानते हो, दूसरे का पक्ष जानना नहीं चाहते।....आज तुम पहले मेरी बात सुनो।'

कर्ण सहम गया। आज तक उसे इतनी ममता से किसी ने नहीं डाँटा था। वह चाहे कुंती को माता का सम्मान देने को प्रस्तुत नहीं था; किंतु यह सत्य था कि वे उसकी जननी हैं। इसीलिए कुंती ने उसे इस प्रकार डाँटने का साहस किया था।....कर्ण उन्हें अपनी माँ माने या न माने, वे तो उसे अपना पुत्र मानती ही हैं। ...मानती क्या हैं, वह उनका पुत्र है।....

'सुन रहा हूँ, माँ।' इस बार कर्ण का स्वर कुछ दबा हुआ था।

'दुर्योधन को रोकने की कोई आवश्यकता नहीं थी पांचाली को।' कुंती बोलीं, 'उसमें सामर्थ्य ही नहीं थी कि वह स्वयंवर की प्रतिज्ञा पूरी कर सकता। इसलिए उसका स्वयंवर में सम्मिलित हो, असफल रह अपमानित होना अधिक बड़ा दंड था। तुम्हारे सफल होने की कुछ सम्भावना थी, इसी भय के कारण उसने तुम्हें रोक दिया।' कुंती ने रुककर उसकी ओर देखा, 'और सूत एक व्यवसाय है, जाति नहीं। अपने व्यवसाय से सम्बंधित होने पर, वही अपमान का अनुभव करता है, जो स्वयं उसे हीन मानता है। तुम सूत के व्यवसाय को हीन मानते हो; अधिरथ और संजय, ऐसा नहीं मानते। तुम राधेय कहलाने में आज अपमान का अनुभव नहीं करते; कल यदि तुम्हारे मन में, यह भाव उठे कि राधा एक साधारण स्त्री है, हीन स्त्री है, तुम्हारी माता होने के योग्य नहीं है, तो तुम राधेय पुकारे जाने पर भी अपमान का अनुभव करोगे....।'

कर्ण को कोई उत्तर नहीं सूझा।....सत्य ही कह रही हैं कुंती।....आहत तो उसका अहंकार होता था....अन्यथा धनुर्धर के रूप में अर्जुन की श्रेष्ठता की चर्चा सुनकर, वह क्यों तड़प उठता था? अधिरथ के परिवार में पलने और बढ़ने के बाद भी 'सूतपुत्र' सुनते ही, उसके तन-बदन में आग क्यों लग जाती थी? उसका मन कभी इस प्रकार स्वयं से तटस्थ होकर, अपने ऊपर अभियोग लगाने अथवा लगाये गये अभियोग पर विचार करने को तैयार नहीं हुआ था... पर आज....कर्ण को लगा कि उसके अहंकार का कोई कगार टूटकर गिर गया था। मन कैसा तो विगलित-सा हो गया था। वह अपने अधरों में ही फुसफुसाया, 'आप अब तक कहाँ थीं, देवि! मुझे समझाने पहले क्यों नहीं आईं?'

'देवी क्यों कहता है, हत्यारिणी कह।' कुंती के तेवर वैसे ही वक्र थे; किंतु उनका स्वर कुछ भीग आया था, 'तू अपनी व्यथा की बात कहता है, पुत्र! कभी उस कुंती की व्यथा पर भी विचारकर।....बहुत छोटी थी, जब मेरे जनक शूरसेन ने मुझे अपने पितृष्वसीय कुंतिभोज को दे दिया था। पिता कुंतिभोज के घर में क्या अवस्था रही होगी मेरी, सोच! दुर्वासा जैसे औघ और क्रोधी ऋषि को प्रसन्न रखने का दायित्व सौंपा गया था मुझे।...पिता का आदेश! उनके सम्मान की रक्षा! दुर्वासा को मैं किसी भी प्रकार अप्रसन्न नहीं होने दे सकती थी। उनके रोष को रोकना था, जैसे भी हो....यह उनकी ही मंत्रणा थी कि तेरा जन्म हुआ।....यह कैसे सम्भव था पुत्र! कि मेरे जैसी अबोध बालिका मात्र, उस प्रासाद में रहते हुए, अपने पिता से अपना गर्भ

छिपा लेती, उनके अज्ञान में ही यह प्रसव हो जाता और अपने नवजात शिशु को मरने के लिए मैं अश्व नदी के जल में प्रवाहित कर आती?....पर इसमें तेरा भी क्या दोष! तुझे तो राधा और अधिरथ ने यही बताया होगा कि उन्हें गंगा की धारा से बहता हुआ मिला। मेरे पिता कुंतिभोज ने उन्हें यही कहने को कहा होगा।'

कर्ण चौंका, 'तो क्या उन्होंने मुझे गंगा की धारा में नहीं पाया?'

कुंती के अधरों पर एक मंद मुस्कान आ बैठी, 'कभी उस सारे भूगोल पर दृष्टि डाली होती, तो तुझे इस कथा के सत्य का ज्ञान हो गया होता।'

कर्ण ने कुछ नहीं कहा। मौन अधरों और उपेक्षापूर्ण नयनों से कुंती की ओर देखता रहा।

'भोजपुर से अश्व नदी में बहाई गई एक मंजूषा, सुरक्षित बहती हुई आकर चर्मणवती में बहने लगती है। चर्मणवती उसे बहाकर यमुना में ले जाती है। यमुना उसे प्रयाग में गंगा को सौंपती है; और चंपानगरी में अधिरथ उसे गंगा की धारा में से निकालता है। वह एक साधारण मंजूषा थी अथवा चतुर और दक्ष नाविकों द्वारा चालित कोई सैनिक अथवा व्यापारिक बेड़ा, जो सहस्त्रों योजन तैरता हुआ, सुरक्षित चम्पानगरी तक जा पहुँचा?' कुंती ने कर्ण की ओर देखा, 'तुमने कभी इस कथा का बौद्धिक विश्लेषण किया होता, तो स्वयं ही समझ जाते कि यह सम्भव नहीं है, यह मात्र एक कथा है....।'

"क्यों? सम्भव क्यों नहीं है?' कर्ण ने क्षीण-से स्वर में प्रतिवाद किया, 'ईश्वर की इच्छा हो तो कुछ भी सम्भव हो सकता है।'

'न मैं ईश्वर से विवाद करती हूँ, न उसकी इच्छा का विरोध।' कुंती बोलीं, 'किंतु ईश्वर की बनाई इस प्रकृति के भी कुछ नियम हैं। सहस्त्रों योजन की यात्रा में किसी लहर ने उस मंजूषा को नहीं डुबोया, कहीं जल उसमें प्रविष्ट नहीं हुआ, किसी महामत्स्य अथवा ग्राह ने उस पर आक्रमण नहीं किया, कोई डोंगी, कोई नौका अथवा जलपोत उसके मार्ग में नहीं आया, किसी भँवर ने इस मंजूषा को नहीं घेरा, उस नवगात शिशु को इतने दीर्घकाल तक न भूख ने पीड़ित किया न प्यास ने। वह तो जैसे अमृत पीकर सोया हुआ था।... सहस्त्रों योजनों की उस यात्रा में, मार्ग में किसी और मनुष्य ने उस मंजूषा को नहीं देखा, किसी ने उसे नहीं रोका। वह सीधी अधिरथ के पास जा पहुँची, जैसे उस पर अधिरथ का नाम और पता लिखा हुआ था।'

'मैंने कहा न कि यह ईश्वर की इच्छा थी।' कर्ण कुछ रोषपूर्वक बोला, 'वह मेरे जीवन की रक्षा करना चाहता था।'

'जब अपने जीवन की रक्षा को तू ईश्वरीय विधान मानकर संतुष्ट है, तो जननी द्वारा अपने त्याग और अधिरथ सूत के घर पालन-पोषण को भी ईश्वरीय विधान क्यों नहीं मानता? उसके लिए तू अपनी माँ से क्यों रुष्ट है?' कुंती की दृष्टि जैसे कर्ण के हृदय के आर-पार देख रही थी, 'पर तू वह क्यों मानेगा, जिसमें किसी दूसरे को अपना अपराधी घोषित कर, उसे दंडित न कर सके। वैसे भी तुझे अभ्यास हो गया है, स्वयं को एक दिव्य पुरुष मानने का। तू सूर्यपुत्र है। अलौकिक रूप पाया है तूने। मंजूषा में रख तुझे जल में प्रवाहित किया गया और ईश्वर अपने हाथों में मंजूषा को खेकर, अधिरथ के पास ले गये, और आदेश दिया, 'इसका पालन-पोषण करो। यह दिव्य संतान है। बड़ होकर बहुत सारे असाधारण कार्य करने हैं इसे। कुलवधुओं का अपमान करना है....माता को हत्यारिणी घोषित करना है....भाइयों का वध करने की प्रतिज्ञा करनी है इसे। पर वे तेरी मंजूषा मेरे पास क्यो लाते! मैं तो हत्यारिणी हूँ। मुझ हत्यारिणी की याद में, तुम जैसा एक दिव्य पुरुष कैसे पलता!'

कर्ण सिर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा। कुछ क्षणों के पश्चात उसने दृष्टि उठाई, 'तो सत्य क्या है, माता?'

कुंती चौंकी....कर्ण ने उसे माता कहकर सम्बोधित किया था। इसका कुछ तो अर्थ होगा, उसका मन कहीं तो थोड़ा पिघला होगा....

'सत्य यह है, पुत्र! कि मेरे पिता महाराज कुंतिभोज न अपनी पुत्री की कानीन संतान को समाज के सम्मुख स्वीकार करना चाहते थे, न उसकी हत्या का पाप अपने सिर लेना चाहते थे। इसलिए किन्हीं सूत्रों से संतानहीन राधा और अधिरथ से सम्पर्क कर, तुम्हें उन्हें सौंप वे संतुष्ट हो गए। मैं तब इस स्थिति में नहीं थी कि उनके मन को जान पाती, अथवा उनके द्वारा की गई सारी व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करने में सफल हो पाती। मैं तो बस इतना ही जान पाई कि तुझे हस्तिनापुर के किसी अधिरथ सूत को सौंपा गया है।....कुंती बोलीं, 'पिता चाहते थे कि मैं तुम्हें भूल जाऊँ; पर मैं तुझे कैसे भूल सकती थी! मैंने अपने स्वयंवर में हस्तिनापुर के युवराज का वरण किया, ताकि हस्तिनापुर आ सकूँ। यहाँ रह सकूँ। तुझे खोज सकूँ। जानती थी कि हस्तिनापुर की सम्राज्ञी होकर भी तुझे पुनः प्राप्त नहीं कर सकती। तुझे न तो मेरा पितृकुल स्वीकार करेगा, न श्वसुरकुल।....किंतु मन चाहता था कि तुझे देख सकूँ। दूर से ही सही, पर निहार सकूँ। तुझे गोद में न भी ले सकूँ, तो तेरे सम्मुख तो बैठ सकूँ।....तेरे मुख से अपने लिए 'माता' सम्बोधन न भी सुन सकूँ, तो तुझे 'पुत्र' कहकर तो पुकार सकूँ।' कुंती का स्वर रुँध गया। वे आगे बोल नहीं सकीं।

कर्ण का प्रतिरोध जैसे पिघलने लगा था। वह आकर कुंती के सम्मुख खड़ा हो गया। उसने अपनी तर्जनी से कुंती के अश्रु पोंछे, 'पर ऐसा क्यों हुआ माता? कुंतिभोज मुझे स्वीकार क्यों नहीं कर सकते? पराशर ने कृष्णद्वैपायन व्यास को स्वीकार किया था कि नहीं?'

'पराशर ऋषि थे। ऋषि प्रत्येक जन्म को दिव्य मानता है। दुर्वासा भी यही मानते थे।' कुंती बोलीं, 'किंतु कुंतिभोज राजा हैं। राजपरिवारों में कानीन पुत्रों को मान्यता नहीं मिलती, पुत्र! शांतनु ने कृष्णद्वैपायन व्यास को अपना पुत्र स्वीकार नहीं किया। सत्यवती भी मेरे ही समान अपने पति तथा श्वसुरकुल को अपनी कानीन सतान की सूचना नहीं दे सकीं। वे अपने हाथों उसका पालन-पोषण नहीं कर सकीं। महाराज शांतनु की मृत्यु के पश्चात व्यास समर्थ ऋषि होकर, इस वंश की सहायता के लिए ही हस्तिनापुर के राजप्रासाद में प्रवेश पा सके। यदि महाराज शांतनु ने दीर्घायु पाई होती, अथवा कुरुवंश संतानहीनता क संकट में नहीं पड़ा होता, तो शायद माता सत्यवती भी महर्षि को राजप्रासाद में बुलाने का साहस न कर पातीं।'

'पर यदि ऋषि स्वीकार करते हैं, तो राजवंशों को इसमें क्या आपत्ति है? धर्म के नियामक तो ऋषि ही हैं।'

'तुम नहीं जानते क्या?' कुंती वितृष्णा से मुस्कराईं, 'ऋषि का चिन्तन समाजहित से प्रेरित होता है और राजवंश का स्वार्थ से। ऋषि के पास देने के लिए केवल ज्ञान है, जो कि वह किसी भी योग्य पात्र को दे सकता है। एक को दे देने से उसका ज्ञान चुक नहीं जाता, कि दूसरे को उत्तराधिकार में कुछ दे न सके। राजा के पास राज्य है, जिसे वह अपनी मृत्यु के पश्चात भी अपनी संतान के माध्यम से अपने ही पास रखना चाहता है। यदि कानीन पुत्र को पुत्र मान लिया जाए, तो वह सारे पुत्रों में ज्येष्ठ होगा। राजा को अपनी औरस संतान के होते हुए भी अपना राज्य अपने कानीन पुत्र को ही देना पड़गा। हाँ! औरस पुत्र का जन्म न हो तो राजा क्षेत्रज अथवा दत्तक पुत्र को स्वीकार करता ह; किंतु कानीन पुत्र को वह तब भी मान्यता नहीं देता।'

सहसा कर्ण चौंका....वह समाजशास्त्र पर चर्चा करने के लिए तो यहाँ नहीं रुका था। आज उसके सम्मुख वह स्त्री खड़ो थी, जिसे वह आज तक अपने शत्रुओं की माता मानता आया था; और आज वह कह रही है कि वह उसकी जननी है....आज तक जिससे घृणा करता रहा था, आज वह बता रही है कि उसे उससे कितना प्यार करना चाहिए था।....कर्ण अपने मन की दृढ़बद्ध धारणाएँ नहीं मिटा सकता था। उसके मन के विरोध, उपालम्भ और कष्ट - इस एक सूचना से धुल तो नहीं गये थे।....वह इस स्त्री को माँ का सम्मान कैसे दे सकता था? किंतु वह अपने मन को उसके चरणों में लोटने से रोक भी कैसे सकता था? उसके मस्तिष्क में निरन्तर विस्फोट हो रहे थे, 'जन्म के समय कुछ नहीं कर सकीं, तो बाद में हस्तिनापुर आकर क्यों नहीं खोजा मुझे?'

'खोजना तो बहुत चाहा तुझे,' कुंती बोलीं, 'किंतु क्या कह कर खोजती तुझे? मैं तो बस एक नाम जानती थी कि तू अधिरथ के घर में है। किंतु अधिरथ कौन है? कहाँ है? तेरा नाम क्या है?'

'क्यों, तुम किसी से भी पूछकर अधिरथ के घर आ सकती थीं। मुझे बता सकती थीं।' कर्ण का आक्रोश जैसे चुक ही नहीं रहा था। कुंती के तर्कों से वह सागर की लहरों के समान पीछे हट जाता था; और थोड़ी देर में दूसरी लहर के रूप में पुनः लौट आता था।

कुंती अपने क्षोभ के मध्य भी हँसीं, "यदि इस प्रकार पूछ-पड़ताल कर, मैं अधिरथ के घर पहुँचकर, तुझे गोद में उठाकर कहती, 'पुत्र! मैं तेरी जननी हूँ।' तो उस रहस्य की रक्षा कैसे होती, जिसके लिए तुझे स्वयं से पृथक करना पड़ा था? अपने पितृकुल और श्वसुरकुल के सम्मान की रक्षा कैसे करती मैं?' कुंती कुछ रुकीं, किंतु उन्होंने कर्ण को बोलने का अवसर नहीं दिया, 'मैंने तुझे तब जाना, जब तू रंगशाला म अर्जुन से भिड़ चुका था और अधिरथ ने आकर, तुझे पुत्र के रूप में सम्बोधित किया था।....'

'तो तभी बता देतीं तो कौन-सा आकाश गिर पड़ता?'

'आकाश गिरने के लिए नही बना, पुत्र! इसलिए वह तो नहीं गिरता, न ही गिरा; किंतु मेरे मन-मंदिर में बने अनेक स्वर्णिम प्रासाद गिर गए। मेरी आशाएँ ध्वस्त हो गईं। मेरी इच्छाएँ जलकर क्षार हो गईं।' कुंती बोलीं, 'तब तक तू दुर्योधन का परम मित्र बन चुका था। उस दुर्योधन का, जिसने भीम को विष खिलाकर, अचेतावस्था में उसे बाँधकर, नागों से दंशित करवाने के लिए गंगा की धारा में डाल दिया था.... तब तक तू अर्जुन का शत्रु बन चुका था....तू आचार्य द्रोण से रुष्ट हो चुका था।....भगवान परशुराम से झूठ बोलकर षडयंत्रपूर्वक, उनकी विद्या चुराने का अपराधी बन चुका था।'

'क्यों? मुझे द्रोण से विद्या सीखने का अधिकार क्यों नहीं था? क्योंकि मैं सूतपुत्र था?' कर्ण विषाक्त वाणी में बोला, 'कितना अपमानित हुआ हूँ मैं! कितना....!'

'मैं आचार्य का पक्ष नहीं लेती। उसकी कोई बाध्यता नहीं है मेरे लिए; किंतु विद्या का दान तो गुरु की इच्छा से ही मिलता है, उनकी सेवा से। हम किसी के कंठ पर अपना चरण धरकर, उससे बलात विद्या नहीं सीख सकत। विद्या दस्युवृत्ति से नहीं मिलती, पुत्र! सेवावृत्ति से मिलती है।'

'किंतु मैं सुपात्र था।' कर्ण बोला, 'क्षत्रियों का ऐसा कौन-सा गुण है, जो किसी और में है और मुझमें नहीं है?'

'कौन कहेगा कि एकलव्य सुपात्र नहीं था? तू अपनी तुलना एकलव्य से कर।' कुंती बोलीं, 'गुरु ने उसका तिरस्कार किया, तो उसने हठ नहीं की। नीचता पर नहीं उतरा वह। किसी से झगड़ा नहीं किया। मनुष्य की धातु उसकी असफलता के क्षणों में ही पहचानी जाती है।....एकलव्य किसी और गुरु के पास नहीं गया। आचार्य को ही अपना गुरु माना और साधना की। जिस गुरु ने उसका तिरस्कार किया था, उसी को उसने गुरुदक्षिणा दी।....मैं नहीं कहती कि आचार्य ने उचित किया। यह भी नहीं कहती कि प्रत्येक व्यक्ति को एकलव्य का सा आचरण करना चाहिए....केवल तुझे बता रही हूँ कि तेरे साथ कोई अत्याचार नहीं हुआ। कोई ऐसा अन्याय अथ्वा अधर्म नहीं हुआ कि तू पांडवों के प्राणों का ग्राहक हो गया। आज तक तू उनका शत्रु बना हुआ है और उनका वध करने को प्रयत्नशील है।'

'तो पांडवों ने कौन-सा मेरे साथ उचित व्यवहार किया?' कर्ण कटु स्वर में बोला, 'भीम और अर्जुन ने क्या कहनी और अनकहनी नहीं कही मुझे? वे मेरे प्राणों के ग्राहक नहीं हैं क्या?'

'कितनी बार उन्होने तेरे प्राण लेने का प्रयत्न किया? कितनी बार उन्होंने तेरी हत्या का षडयंत्र रचा? कितनी बार उन्होंने सेना लेकर तेरे वध का अभियान किया?' कुंती का तेजस्वी स्वर गूँजा, 'तेरा तिरस्कार आचार्य ने किया और तू अर्जुन का शत्रु हो गया, क्योंकि वह आचार्य को प्रिय था। तू क्या समझता है कि तू

अर्जुन का वध कर देगा तो आचार्य तुझसे प्रेम करने लगेंगे? अर्जुन उनका सर्वाधिक प्रिय शिष्य है, फिर भी उन्होंने अश्वत्थामा को अधिक शिक्षा दी है। तू उससे ईर्ष्या क्यों नहीं करता? उसके वध के लिए षडयंत्र क्यों नहीं रचता?'

'पांडवों से तो मेरी शत्रुता इसलिए है, क्योंकि वे मरे मित्र दुर्योधन के शत्रु हैं।' कर्ण बोला।

'पांडव दुर्योधन के शत्रु नहीं हैं। दुर्योधन पांडवों का शत्रु है। दुर्योधन ने उनके प्राण लेने के प्रयत्न किए, उनसे उनका राज्य छीना, उन्हें अपमानित किया और उसकी प्रतिक्रिया में पांडवों ने क्या किया?' कुंती का स्वर जैसे उसके वक्ष को चीरता हुआ निकल रहा था, 'आज भी युधिष्ठिर पाँच ग्राम लेकर संधि के लिए तत्पर बैठा है। वह आज भी दुर्योधन को अपना भाई मानता है। उसके मन में आज भी दुर्योधन के लिए घृणा नहीं है।'

'और भीम?'

'भीम ने अवश्य प्रतिज्ञाएँ की हैं; किंतु वह भी धर्मराज की आज्ञा से बाहर नहीं है।'

उन दोनों के मध्य एक सन्नाटा-सा छा गया। कर्ण कुछ कह नहीं रहा था; किंतु उसका मन कुंती से सहमत नहीं हो पा रहा था। उसे मौन देखकर कुंती ही बोलीं, 'अब जब तू सब कुछ जान ही गया है तो अपनी वृद्धा माँ को सहारा दे, अपने भाइयों की भुजा थाम, छोड़ दे अपना यह सामाजिक हठ। कुरुवंश को उसके सम्पूर्ण नाश से बचा।'

'यह सम्भव नहीं है, माँ! मैं दुर्योधन को नहीं छोड़ सकता।' कर्ण बोला, 'मेरा मन अब भी यही कहता है कि हस्तिनापुर में सबने मेरी महत्वाकांक्षाओं का दमन किया, मेरा तिरस्कार किया। बस एक दुर्योधन ही था, जिसने अपनी मित्रता निभाई। मुझे मान दिया, सम्मान दिया, धन दिया, पद दिया....। मैं उससे विश्वासघात नहीं कर सकता।'

कुंती ने कुछ नहीं कहा।

'क्यों? तुम सहमत नहीं हो, माँ ?'

'नहीं।' कुंती का स्वर कठोर था, 'तेरी महत्वाकांक्षाएँ अपने स्थान पर ठीक थीं; किंतु यदि किसी की महत्वाकांक्षा पूरी न हो, तो उसे यह अधिकार नहीं है कि वह अधर्म पर उतर आए, वह दस्यु बन जाए, अथवा दस्युओं के दल में सम्मिलित हो जाए....युधिष्ठिर जानता था कि धृतराष्ट्र उसे लूट रहे हैं, फिर भी उसने पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। वह जानता था कि उसके साथ छल हो रहा है, फिर भी वह अपने वचन से पीछे नहीं हटा। तेरी महत्वाकांक्षा क्या है? दुर्योधन जैसे पापी के चरण धो-धोकर पीना? इस आकांक्षा में कौन-सी महानता है? हाँ! अपने महत्व की आकांक्षा है....महत्वाकांक्षा तो युधिष्ठिर की है, जो इस सारे राज्य को त्याग कर केवल तपस्या करना चाहता है। वह राज्य नहीं चाहता, धर्म चाहता है, सत्य चाहता है, ईश्वर चाहता है। महत्वाकांक्षा तो अर्जुन की है, जो तपस्या के वरदान-सी मिली उर्वशी को त्याग आया। पांडवों को अधर्म नहीं चाहिए। अधर्म के माध्यम से कोई सुख-सुविधा नहीं चाहिए।....'

'युधिष्ठिर की बात तो मैं फिर भी कुछ-कुछ समझता हूँ।' कर्ण ने कुंती की बात काट दी, 'किंतु मेरे सम्मुख अर्जुन का बखान मत करो। क्या है अर्जुन? एक साधारण-सा निस्पृह प्राणी....क्या महानता है उसमें? उस केंचुए में?....'

'मेरी बात सुन!' लगा, कुंती किसी आलौकिक शक्ति से आविष्ट हो गई थीं, 'जिस पाचाली ने तुझे स्वयंवर में भाग लेने से रोक दिया और तू इतनी क्षुद्रता पर उतर आया कि नारी का ऐसा अपमान करने लगा, उस पांचाली को जय करके लाया था अर्जुन! मेरे एक संकेत पर उसने पांचाली धर्मराज को सौंप दी। तनिक-

सा मोह नहीं किया उसने। स्वयंवर में उसने जिसे स्वयं जीता था, उस पांचाली को भाई के साथ एकांत में देख लेने मात्र के अपराध में बारह वर्षों तक इन्द्रप्रस्थ से बाहर भटकता रहा वह। हिमालय पर बैठ वर्षों तपस्या कर पशुपतास्त्र पाया उसने। किसी गुरु से झूठ बोल, पाखंड कर, धनुर्विद्या पाने का प्रयत्न नहीं किया।' कुंती ने आगे बढ़, उसके हनु के नीचे अपनी तर्जनी रख, उसका मुख ऊपर उठाया, 'ऐसा क्या असाधारण है तुझमें कि स्वयं को इतना महान मानता है तू? असाधारण गिनता है स्वयं को? दिव्य पुरुष समझने लगा है स्वयं को? उषा-सी सुनहली त्वचा पाकर मनुष्य महान नहीं हो जाता। मनुष्य महान होता है अपने आचरण से, अपने कर्मों से। ...धर्म, अधर्म की पहचान नहीं है तुझको। एक पापी से महत्व मिला तो उसी का हो गया। उसे मित्र कहता है तू? जानता है, दुर्योधन की मैत्री क्या है? तेरी आत्मा का हनन। मित्र वह होता है जो मित्र का हित साधता है, उसे धर्म के मार्ग पर ले चलता है, उसकी आत्मा का उन्नयन करता है। तेरे मित्र तेरे साथ क्या कर रहे हैं? या तू उनके साथ मिलकर क्या कर रहा है - राक्षसी कृत्य। नारकीय योजनाएँ। कहाँ जाकर रुकेगी तेरी आत्मा?...रसातल में? एक पांडवों का मित्र है कृष्ण..।'

'ठहरो, माँ! कर्ण का क्षुब्ध स्वर सुनाई दिया, 'मैं समझता हूँ कृष्ण और दुर्योधन का अंतर। मुझे भी कृष्ण मिले होते....।'

'कृष्ण मिला है, इसलिए पांडव धर्म पर नहीं चल रहे।' कुंती के तीव्र स्वर ने उसकी बात काट दी, 'पांडव धर्म पर चल रहे हैं, इसलिए कृष्ण उनका मित्र बना। कृष्ण को धर्म चाहिए। तुझे केवल मैत्री चाहिए। मैत्री चाहे हत्यारों की हो, पापियों की हो, आततायियों की हो।'

'कैसी माँ हो तुम, जिसे अपने महावीर पुत्र में कोई गुण दिखाई नहीं देता!' कर्ण की सारी कोमलता लुप्त हो गई थी और उसका स्वर बहुत कठोर हो गया था, 'मुझमें कोई गुण नहीं है, तो मुझे खोजती हुई यहाँ तक क्यों आई हो, देवि?'

उसके इस परिवर्तन से कुंती सर्वथा अप्रभावित रहीं। उतनी ही कठोरता से वे भी बोलीं, 'भाइयों को एक-दूसरे का रक्त बहाने से रोकना चाहती हूँ। अपने पाँच पुत्रों की जीवन-रक्षा की इच्छा से आई हूँ।.... अपने छठे पुत्र को अपनी आत्मा के हनन से रोकना चाहती हूँ।....किंतु तेरा अहंकार कुछ गले तब न! तेरी हृदय-शिला में अपने भाइयों के लिए स्नेह का कोई उत्स फूटे....।'

'मुझमें कोई गुण तो देखो माँ!' कुंती की फटकार से कर्ण का मन जैसे रो पड़ा, उसकी भंगिमा अनुनय करने की-सी हो गई, 'कब से प्रयत्न कर रहा हूँ कि मेरे भी किसी गुण को मान्यता मिले। जिसने निर्गुण ब्रह्म को नहीं पहचाना, उसकी शालिगराम की भक्ति को भी सराहा जाता है। मैंने जिन्हें भाइयों के रूप में जाना ही नहीं, उनके लिए स्नेह कहाँ से लाऊँ? हाँ! जिसे मित्र माना है, जिसे अपने शैशव से प्रेम और सम्मान की दृष्टि से देखा है, उसके प्रति अब कठोर नहीं हो सकता।....जीवन में और कोई उदार कर्म किया हो या न किया हो, किंतु अपनी मैत्री का निर्वाह तो कर रहा हूँ। धर्म के प्रति न सही, किंतु मित्र के प्रति तो निष्ठा में कोई कमी नहीं है।'

कुंती हँसीं, जैसे साक्षात कटुता ही आकर उनके अधरों पर विराजमान हो गई हो, 'कितने गर्व से कह रहा है, पाप के प्रति तो निष्ठा है मुझमे! अच्छा होता कि वह निष्ठा तुझमें न होती।....'

कर्ण मौन खड़ा कुंती को देखता रहा। उसके पास कुंती की बात का कोई उत्तर नहीं था। ठीक कह रही थी माँ। कर्ण में निष्ठा तो थी, किंतु दुर्योधन के प्रति, क्योंकि उसने कर्ण की प्रशंसा की, उसका सम्मान किया, उसे अपना मित्र माना....तो उसकी निष्ठा उसके अपने प्रति थी।... यदि दुर्योधन भी उसका वह मान-सम्मान न करता तो?....

'तुम जो कुछ भी कहो, माँ! किंतु अब मैं दुर्योधन को नहीं छोड़ सकता।' कर्ण बोला, 'श्रीकृष्ण ने जब से मुझे तुम्हारे विषय में बताया है, तब से ही मेरे मन ने बहुत चिन्तन-मनन किया है; किंतु मुझे और कोई मार्ग नहीं मिला है। मैं पांडवों की-सी वृत्ति अंगीकार नहीं कर सकता। यदि मैं उनके ज्येष्ठ सहोदर के रूप में उनके साथ खड़ा हो गया, तो न मैं युधिष्ठिर के मार्ग पर चल पाऊँगा, न वे अपना मार्ग त्याग मेरे साथ चल पाएँगे। युधिष्ठिर अपना सिंहासन मुझे दे देगा; और मैं उसे दुर्योधन के चरणों में अर्पित कर दूँगा। पांडवों को क्या मिलेगा, माँ, मुझे अग्रज के रूप में प्राप्त कर? जो राज्य वे दुर्योधन से ल कर, उसे जय कर प्राप्त कर सकते हैं, वह भी उनसे छिन जाएगा। वे सर्वथा कंगाल हो जाएँगे। मुझे अग्रज के रूप में पाकर वे कुछ नहीं पाएँगे, माँ!'

कुंती मौन रह गई। कर्ण ठीक कह रहा था।....यह जानकर कि कर्ण उससे ज्येष्ठ है, युधिष्ठिर कभी सिंहासन पर नहीं बैठेगा....और कर्ण, वह राज्य दुर्योधन को दे ही देगा। उसकी आत्मा दासी है दुर्योधन की। कुंती इसलिए तो कर्ण को मनाने नहीं आई थीं कि पांडवों की राज्य-प्राप्ति की सारी सम्भावनाएँ ही समाप्त हो जाएँ और कर्ण के ही समान, ये पाँचों भी, उस अधर्मी दुर्योधन के दास हो जाएँ।

'तू उस अधर्मी दुर्योधन का संग छोड़ दे, पुत्र! अपने भाइयों के पास लौट आ।' कुंती धीरे से बोलीं, 'तुझे मित्र ही चाहिए तो कृष्ण से मैत्री कर।'

'अब यह सम्भव नहीं है, माँ! यह सत्य है कि लता का जन्म भूमि से होता है; किंतु जिस वृक्ष से लिपटकर वह आकाश की ओर उठती है, यदि उस वृक्ष से उसे पृथक करोगी, तो वह लता छिन्न-भिन्न तो होगी ही, जीवित भी नहीं रह पाएगी।' कर्ण बोला, 'यह जानकर भी कि तुम मेरी जननी हो, जैसे मैं अपनी माता राधा को त्याग नहीं सकता, वैसे ही यह जानकर भी कि युधिष्ठिर मेरा सहोदर है, मैं दुर्योधन को त्याग नहीं सकता।'

कर्ण की आँखों में कुंती उसकी असहायता को पढ़ रही थीं।

'पुत्र', तू पांडवों के पक्ष में नहीं आना चाहता, तो मत आ।' कुंती बोलीं, 'किंतु दुर्योधन का पक्ष तो त्याग दे। मैं नहीं चाहती कि मेरी ही संतान, परस्पर युद्ध कर, एक-दूसरे का रक्त बहाए।'

'तुम बहुत देर से आई हो, माँ!' कर्ण ने कुंती की ओर पीठ कर ली थी, 'मेरे मन में बहुत कटुता थी तुम्हारे लिए। माँ के वात्सल्य का अमृत जो नहीं पाया था। वंश का चाहे कोई महत्व न हो, जाति चाहे जन्म से नहीं कर्म और आचरण से निर्धारित होती हो; किंतु मैंने उसी के कारण बहुत विष पिया है। मेरा रक्त उससे बहुत विषाक्त हुआ है।....अब शायद तुम्हारे स्नेह का अमृत मेरे दग्ध हृदय को कुछ शांति दे, मेरे आचरण में परिवर्तन आए; किंतु क्षत्रिय होकर मैं युद्ध से पीछे नहीं हट सकता। यदि मेरा और अर्जुन का युद्ध न हुआ, तो हम दोनों ही क्षत्रिय समाज में कलंकित होंगे कि युद्ध से पलायन के लिए हम दोनों ने इस सम्बन्ध की कल्पना कर ली है।' कर्ण ने रुककर कुंती की ओर देखा, 'सत्य कहूँ तो इस युद्ध के लिए दुर्योधन भी उतना उत्सुक नहीं था, जितना मैं था। इस युद्ध का सूत्रधार मैं हो हूँ, माँ! मेरे ही भरोसे दुर्योधन ने इस युद्ध को आमंत्रित किया है। अब यदि मैं ही युद्ध से पलायन कर गया, तो मैं कौन-सा पुण्य कमाऊँगा। माँ! अब तक बहुत-से पाप किए हैं मैंने, किंतु युद्ध का त्याग उन सबसे बड़ा पाप होगा।'

'तो ठीक है। युद्ध में अपने सहोदरों का वध करने के पुण्य कमा।' कुंती का स्वर पर्याप्त प्रखर हो गया, 'अपनी मैत्री के प्रमाण में अपने सहोदरों के शव दुर्योधन को भेंट कर। सहोदरों के रक्त से अपनी मित्रता की लता को सींच। इस धरती पर से धर्म का बिरवा उखाड़ फेंक और अधर्म के वृक्ष की छाया में सदा के लिए बैठा रह। पुण्य-सलिला को पाट दे और पाप के सागर में निमग्न हो जा।'

'नहीं माँ! अब यह नहीं होगा। अपने संचित कर्मों के प्रभाव से मैं मुक्त नहीं हो सकता। कर्म-बंधनों को मैं काट नहीं सकता, किंतु नया कुकर्म नहीं करूँगा।' कर्ण के नेत्रों में आकाश की-सी स्वच्छता थी। उसके मुखमंडल पर सात्विक तेज था, 'तेरे वात्सल्य का अमृत, मेरे रक्त के विष का कुछ निराकरण तो करेगा ही।.. मैं पिछले दो दिनों में बहुत बदल गया हूँ, माँ! वह परिवर्तन तुम्हें मेरे आचरण में भी दिखाई देगा।'

कुंती एकटक अपने पुत्र को देख रही थीं, जो इस समय सचमुच ही कुछ दिव्य हो आया था।

'मैं दुर्योधन को त्याग नहों सकता माँ! मैंने अर्जुन के वध की प्रतिज्ञा की है। मैं अपनी प्रतिज्ञा से स्खलित नहीं हो सकता।' उसने कुंती की आँखों में देखा, 'किंतु एक वचन तुम्हें भी देता हूँ। मैं शेष चार पांडवों का वध नहीं करूँगा। वे मेरे हाथ में आ भी गए, तो उन्हें जीवित छोड़ दूँगा। उन्हें जीवन का दान दूँगा।'

कुंती समझ नहीं पाईं कि वे प्रसन्न थीं अथवा अप्रसन्न। यह उनकी कोई उपलब्धि थी अथवा पूर्ण पराजय। 'तो मैं केवल चार पांडवों की माता रह जाऊँगी?'

'नहीं, माँ! तू पाँच पुत्रों की माता रहेगी। यदि मैं अर्जुन के हाथों मारा गया तो तू पाँच पांडवों की माता रहेगी और यदि विधि ने अर्जुन की अल्पायु लिखी है....यदि युद्ध में उसे मेरे हाथों वीरगति प्राप्त हुई, तो भी तेरे पाँच ही पुत्र जीवित रहेंगे।....' कर्ण ने कुंती के चरण स्पर्श किए और अपने अश्रु छिपाता हुआ, आगे बढ़ गया।

कुंती ने भी अपने अश्रु पोंछ लिए।....समझ गईं उन्हें उनका पुत्र मिल गया था।....चार पांडवों ने भी अपना ज्येष्ठ पा लिया था....बस, नहीं मिला तो अर्जुन को कोई नहीं मिला।....कर्ण ने चाहे साम्राज्य की तृष्णा जय कर ली हो, किंतु अर्जुन के प्रति अपनी ईर्ष्या से वह पराजित ही हुआ था।....वह न अपने अहंकार को पहचान पा रहा था, न अपनी ईर्ष्या को। वह उन सबको दुर्योधन के प्रति निष्ठा का नाम देकर स्वयं को गौरवान्वित करना चाहता था, किंतु यह नहीं जानता था कि मोह और अहंकार को सुन्दर शब्दों का आवरण दे भी दिया जाए, तो उनका स्वरूप बदल नहीं जाता।

और इस पर तो वह विचार ही नहीं करना चाहता कि यदि कुंती का भाग्य, दुर्भाग्य में परिवर्तित हो गया। अर्जुन का वध कर्ण के हाथों हुआ और अन्य पांडव दुर्योधन के अन्य सहायकों के हाथों मारे गए तो कर्ण कहाँ खड़ा दिखाई देगा....क्योंकि दुर्योधन को तो वह तब भी नहीं छोड़ पाएगा....

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान के जन्मदिन पर....

(१६ अगस्त, महान् कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान जी की जन्म-तिथि पर विशेष - सम्पादक)

मनोज कुमार शुक्ल 'मनोज'

कवि धर्म को है जिया, कलम बनी तलवार।
ओज लेखनी ने किया, अँग्रेजो पर वार।।
महादेवी की प्रिय सखी, सिद्धी का आकाश।
मात्र चवालीस उम्र में, बिखरा गयीं उजास।।
पास इलाहाबाद के, है निहालपुर ग्राम।
रामनाथ जी थे पिता, घर उनका था धाम।।
सन् उन्नीस सौ चार में, जन्मी थीं चौहान।
गोरों के उस काल में, दुखी था हिन्दुस्तान।।
नाम सुभद्रा जब रखा, घर में छाया हर्ष।
मात पिता के लिये था, खुशियों का वह वर्ष।।
मन सम्वेदित था बहुत, संस्कारी परिवार।
अबला सबला बन गयीं, बनी धनुष टंकार।।

आजादी की चाह में, कविता हुयी जवान।
लक्ष्मण सिंह की संगिनी, संस्कारों की खान।।
ससुराल में मिल गया, इनको सबका साथ।
आजादी की चाह में, तान चलीं थीं माथ।।
गाँधी के संग में बढ़ीं, निर्भय, सीना तान।
हाथ तिरंगा थाम कर, बनीं देश की शान।।
कविता और कहानियाँ, देश प्रेम के बोल।
बिखरे मोती, उन्मादिनी, मुकुल काव्य अनमोल।।
सीधे-साधे चित्र में, दिखे अनोखे भाव।
देश भक्ति पतवार से, खेई जीवन नाव।
लक्ष्मी बाई पर लिखी, कविता हुयी महान।
अमर हो गयी लेखनी, बनी जगत पहचान।।
इस रचना में है छिपा, देश भक्ति पैगाम।
सभी देशवासी उन्हें, शत् शत् करें प्रणाम।।

राष्ट्र-भक्ति का अनूठा उदाहरण - भाषा का महत्व

(वैश्विक हिन्दी सम्मेलन से साभार)

इतिहास के प्रकांड पंडित डॉ. रघुबीर प्राय: फ्रांस जाया करते थे। वे सदा फ्रांस के राजवंश के एक परिवार के यहाँ ठहरा करते थे। उस परिवार में एक ग्यारह साल की सुंदर लड़की भी थी। वह भी डॉ. रघुबीर की खूब सेवा करती थी। अंकल-अंकल बोला करती थी।

एक बार डॉ. रघुबीर को भारत से एक लिफाफा प्राप्त हुआ। बच्ची को उत्सुकता हुई। देखें तो भारत की भाषा की लिपि कैसी है। उसने कहा अंकल लिफाफा खोलकर पत्र दिखाएँ। डॉ. रघुबीर ने टालना चाहा। पर बच्ची जिद पर अड़ गई।

डॉ. रघुबीर को पत्र दिखाना पड़ा। पत्र देखते ही बच्ची का मुँह लटक गया। "अरे यह तो अँगरेजी में लिखा हुआ है। आपके देश की कोई भाषा नहीं है?"

डॉ. रघुबीर से कुछ कहते नहीं बना। बच्ची उदास होकर चली गई। माँ को सारी बात बताई। दोपहर में हमेशा की तरह सबने साथ साथ खाना तो खाया, पर पहले दिनों की तरह उत्साह चहक महक नहीं थी।

गृहस्वामिनी बोली, "डॉ. रघुबीर, आगे से आप किसी और जगह रहा करें। जिसकी कोई अपनी भाषा नहीं होती, उसे हम फ्रेंच, बर्बर कहते हैं। ऐसे लोगों से कोई सम्बंध नहीं रखते।'

गृहस्वामिनी ने उन्हें आगे बताया "मेरी माता लोरेन प्रदेश के ड्यूक की कन्या थी। प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व वह फ्रेंच भाषी प्रदेश जर्मनी के अधीन था। जर्मन सम्राट ने वहाँ फ्रेंच के माध्यम से शिक्षण बंद करके जर्मन भाषा थोप दी थी। फलत: प्रदेश का सारा कामकाज एकमात्र जर्मन भाषा में होता था, फ्रेंच के लिए वहाँ कोई स्थान न था। स्वभावत: विद्यालय में भी शिक्षा का माध्यम जर्मन भाषा ही थी।"

"मेरी माँ उस समय ग्यारह वर्ष की थीं और सर्वश्रेष्ठ कान्वेंट विद्यालय में पढ़ती थीं। एक बार जर्मन साम्राज्ञी कैथराइन लोरेन का दौरा करती हुई उस विद्यालय का निरीक्षण करने आ पहुँची। मेरी माता अपूर्व सुंदरी होने के साथ-साथ अत्यंत कुशाग्र बुद्धि भी थीं। सब बच्चियाँ नए कपड़ों में सज-धज कर आई थीं। उन्हें पंक्तिबद्ध खड़ा किया गया था। बच्चियों के व्यायाम, खेल आदि प्रदर्शन के बाद साम्राज्ञी ने पूछा कि क्या कोई बच्ची जर्मन राष्ट्रगान सुना सकती है?"

मेरी माँ को छोड़ वह किसी को याद न था। मेरी माँ ने उसे ऐसे शुद्ध जर्मन उच्चारण के साथ इतने सुंदर ढंग से सुनाया कि साम्राज्ञी ने बच्ची से कुछ इनाम माँगने को कहा। बच्ची चुप रही। बार-बार आग्रह करने पर वह बोली "महारानी जी, क्या जो कुछ मैं माँगू वह आप देंगी?"

साम्राज्ञी ने उत्तेजित होकर कहा, "बच्ची! मैं साम्राज्ञी हूँ। मेरा वचन कभी झूठा नहीं होता। तुम जो चाहो माँगो। इस पर मेरी माता ने कहा 'महारानी जी, यदि आप सचमुच वचन पर दृढ़ हैं तो मेरी केवल एक ही प्रार्थना है कि अब आगे से इस प्रदेश में सारा काम एकमात्र फ्रेंच में हो, जर्मन में नहीं।"

इस सर्वथा अप्रत्याशित माँग को सुनकर साम्राज्ञी पहले तो आश्चर्यकित रह गईं, किन्तु फिर क्रोध से लाल हो उठीं। वे बोलीं "लड़की, नेपोलियन की सेनाओं ने भी जर्मनी पर कभी ऐसा कठोर प्रहार नहीं किया था, जैसा आज तूने शक्तिशाली जर्मनी साम्राज्य पर किया है। साम्राज्ञी होने के कारण मेरा वचन झूठा नहीं हो सकता, पर तुम जैसी छोटी-सी लड़की ने इतनी बड़ी महारानी को आज पराजय दी है, वह मैं कभी नहीं भूल सकती। जर्मनी ने जो अपने बाहुबल से जीता था, उसे तूने अपनी वाणी मात्र से लौटा लिया। मैं भलीभाँति

जानती हूँ कि अब आगे लारेन प्रदेश अधिक दिनों तक जर्मनों के अधीन न रह सकेगा।' यह कहकर महारानी अतीव उदास होकर वहाँ से चली गई।

गृहस्वामिनी ने कहा "डॉ. रघुबीर, इस घटना से आप समझ सकते हैं कि मैं किस माँ की बेटी हूँ। हम फ्रेंच लोग संसार में सबसे अधिक गौरव अपनी भाषा को देते हैं। क्योंकि हमारे लिए राष्ट्र प्रेम और भाषा प्रेम में कोई अंतर नहीं...। हमें अपनी भाषा मिल गई। तो आगे चलकर हमें जर्मनों से स्वतंत्रता भी प्राप्त हो गई।"

तन तो आज स्वतंत्र हमारा

गोपाल दास 'नीरज'

तन तो आज स्वतंत्र हमारा
लेकिन मन आज़ाद नहीं है
सचमुच आज काट दी हमने
जंजीरें स्वदेश के तन की
बदल दिया इतिहास बदल दी
चाल समय की चाल पवन की

देख रहा है राम राज्य का
स्वप्न आज साकेत हमारा
खूनी कफन ओढ़ लेती है
लाश मगर दशरथ के प्रण की

मानव तो हो गया आज
आज़ाद दासता बंधन से पर
मज़हब के पोथों से ईश्वर का जीवन आज़ाद नहीं है।
तन तो आज स्वतंत्र हमारा, लेकिन मन आज़ाद नहीं है।

हम शोणित से सींच देश के
पतझर में बहार ले आए
खाद बना अपने तन की-
हमने नवयुग के फूल खिलाए

डाल डाल में हमने ही तो
अपनी बाहों का बल डाला
पात पात पर हमने ही तो
श्रम जल के मोती बिखराए

कैद कफस सय्यद सभी से
बुलबुल आज स्वतंत्र हमारी
ऋतुओं के बंधन से लेकिन अभी चमन आज़ाद नहीं है।
तन तो आज स्वतंत्र हमारा, लेकिन मन आज़ाद नहीं है।

यद्यपि कर निर्माण रहे हम
एक नयी नगरी तारों में
सीमित किन्तु हमारी पूजा
मन्दिर मस्जिद गुरूद्वारों में

यद्यपि कहते आज कि हम सब एक
हमारा एक देश है
गूँज रहा है किन्तु घृणा का तार
बीन की झंकारों में

गंगा जमुना के पानी में
घुली मिली ज़िन्दगी हमारी
मासूमों के गरम लहू से पर दामन आज़ाद नहीं है ।
तन तो आज स्वतंत्र हमारा लेकिन मन आज़ाद नहीं है।

जीवन : शब्दों के बीच और शब्दों से परे

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
(कुलपति अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा)

आज सभी संचार माध्यमों द्वारा हमारा पूरा परिवेश शब्दमय हो रहा है। चारों ओर तरह-तरह के शब्द गूँज रहे हैं। चूँकि शब्द महज़ प्रतीक होते हैं इसलिए ध्वनि से अधिक इनकी व्यंजना या अर्थ का महत्व होता है । इन शब्दों को प्रयोग में लाने के लिए सिर्फ़ एक माध्यम की ज़रूरत होती है। माध्यम पर सवार ये शब्द अपने मुक़ाम की ओर आगे चल पड़ते हैं। उन्हें थोड़ा-सा सहारा चाहिए फिर वे ग़ज़ब ढाते हैं। वे दूसरों तक संदेश पहुँचाने, निर्देश देने, सहारा पहुँचाने, इंगित करने का काम आसान कर देते हैं। इसके अलावा इनकी बड़ी भूमिका हमारे मनोभावों की व्यापक दुनिया रचने, बसाने और अनुभव करने में सहायक के रूप में हैं। प्रशंसा, उत्साह, विषाद, हर्ष, माधुर्य, आह्लाद, शोक, पीड़ा, साहस, निंदा, लज्जा, आक्रोश, स्तुति, दया, वात्सल्य, भक्ति, घात, प्रतिघात, आसत्ति (उलझन), स्फाल (घबराहट), करुणा, कृतज्ञता, प्रेम, प्रणय, ममत्व, औदार्य, मृदुता, आनंद, आह्लाद, स्पृहा, ईर्ष्या, जुगुप्सा, द्वेष, घृणा, क्रूरता, हिंसा, ग्लानि, अनुनय, हास-परिहास, कुतूहल, विराग, प्रतिपत्ति, विस्मय, कौतुक, परिताप, व्यंग, कुंठा, विनय, प्रार्थना, पूजा, आराधना, पश्चाताप, वियोग, आदि जाने कितने भावों और रसों को व्यक्त करने के लिए अनेकानेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। मनुष्य जीवन की इबारत हर क्षण इन्हीं सबके साथ से पढ़ी-लिखी जाती है। यही सब तो होता रहता है प्रतिदिन। अहर्निश इन्हीं से हम परिचालित होते रहते हैं। जीवन-व्यापार में नफ़ा नुक़सान और कुछ नहीं इन्हीं की कारस्तानी होती है। भावों से ही जीवन में रंग भरे जाते हैं और इन भावों को सजीव करने वाले शब्द ही हैं । शब्द हमें अलौकिक ढंग से समृद्ध करते चलते है।

कभी ये शब्द आमने-सामने बोल कर या फिर लिखित रूप में सजीव हुआ करते थे। लिपि के आविष्कार के साथ लोग वाणी को लिखित रूप मिला। वह भौतिक वस्तु के क़रीब आई। लोग अभिव्यक्ति के संचार के लिए पत्र लिखने लगे। वाणी का भी विस्तार हुआ। टेलीफ़ोन, मोबाइल, स्काइप, फ़ेस बुक टाइप के ज़रिए वाणी और वक्ता की निकटता देश-काल की सीमाओं को पार करती जा रही है। अब ई-माध्यम (इंटरनेट) इनको और द्रुत गति से लिखित सामग्री को तुरत-फुरत देश-विदेश सर्वत्र पहुँचाते रहने का कार्य करते हैं। शब्दों की सत्ता और व्याप्ति के नित्य नए आयाम खुलते जा रहे हैं।

पर शब्द केवल अभिव्यक्ति या प्रस्तुति तक ही सीमित नहीं रहते। हमारे द्वारा प्रयुक्त शब्द लेंस की तरह भी काम करते हैं और उनके माध्यम से हम दुनिया का दूसरा रूप भी देख पाते हैं। तभी भर्तृहरि ने कहा कि शब्द से ही दुनिया हमें विदित हो पाती है (सर्वं शब्देन भासते!) । यों भी कहा जा सकता है कि जब हम अपने पार जाकर अपना अतिक्रमण करना चाहते हैं या फिर जो हैं उससे आगे जा कर कुछ और होना चाहते हैं, तो उसे भी सम्भव करने में ये शब्द बड़े मददगार होते हैं। शब्द हमारी कल्पना शक्ति को ऊर्जा देते हैं और रूपांतरण को सम्भव बनाते हैं। पूरा सर्जनात्मक साहित्य शब्दों की इस विलक्षण रचनाधर्मिता का प्रमाण है। काव्य, नाटक, कथा और उपन्यास जैसी विधाओं में रचे साहित्य से समाज का न केवल मानस बनता-बिगड़ता है बल्कि कार्य करने की दिशा भी तय होती है। वस्तु न हो कर प्रतीक होने के कारण शब्दों के प्रयोग को लेकर बड़ी गुंजाइश रहती है। प्रतिभाशाली लेखक और कवि छंद, लय और अलंकारों की सहायता से अपनी प्रस्तुति में विचित्रता

लाते हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास, यमक जैसे अलंकार ध्वनि और शब्दार्थ की अद्भुत जोड़ी बैठाते हैं। इनके प्रयोग से वाक्चातुर्य कुछ ऐसा समाँ बाँधता है कि सुनने वाले चकित हो उठते हैं। प्रकट रूप से कहते हुए भी कुछ न कहना और न कहते हुए भी बहुत कुछ कह डालना और कहते हुए भी छुपा ले जाने की क्षमता परम्परागत कवि-कुशलता या निपुणता में परिगणित होती है।

इस तरह जोड़ने और जुड़ने का अवसर पैदा करते ये शब्द हमारे निजी और सामाजिक जीवन का मानचित्र तैयार करते हुए हमारे अस्तित्व के साथ अभिन्न रूप से सम्बद्ध होते हैं। जब शब्द कार्यों से जुड़ते हैं तो हमारी दुनिया की कायापलट करते हैं। ये शब्द हमारे मानस के स्तर पर पहले और भौतिक स्तर पर पर उसके बाद बदलाव लाते हैं क्योंकि उनका ग्रहण हम मानस से ही करते हैं। ऐसे में यदि शब्दों की दुनिया अक्षर-विश्व कही जाय (अनादिनिधनं देवं शब्दतत्वं यदक्षरं) जो कभी समाप्त न हो तो, यह स्वाभाविक ही है।

वैसे तो शब्दों का खेल और जादूगरी जीवन में हमेशा ही चलती रहती है पर चुनाव जैसे राजनैतिक-सामाजिक महत्व के मौक़े पर उसके नए रंग-ढंग और तेवर दिखाई पड़ते हैं क्योंकि तब बदलाव लाने की पुरज़ोर कोशिश बड़ी शिद्दत से की जाती है। समय का दबाव शब्दों की दौड़ को गति दे कर तीव्र बना देता है। तब भाषा विरोधी को परास्त करने का उपकरण बन जाती है। उठापटक वाली इस दौड़ में वाक्युद्ध शुरू हो जाता है। हास्य-व्यंग, तर्क-कुतर्क, तथ्य और सम्भावना सबका दौर चलता है। ढूँढ-ढूँढ कर तथ्य जुटाए जाते हैं और उनका नए-पुराने संदर्भों में चूल-गाँठ फ़िट की जाती है। कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा जोड़-घटा कर दिन-प्रतिदिन चुनावी माहौल की गर्माहट बनाए रखने की कोशिश रहती है। इन सबके बीच शब्द का व्यापार पनपता है जिसमें नेता, अभिनेता, विशेषज्ञ हर कोई शामिल रहता है और उनकी मदद से 'जेनुइन' और प्रामाणिक लगने वाला बड़ा चित्र उकेरा जाता है। जन समर्थन हासिल करने के लिए एक दूसरे पर लांछन लगा कर छवि धूमिल करना या संशयग्रस्त सिद्ध करना आम बात हो गई है। शब्दों से सपने बुनने और बेंचने के लिए लोक लुभावन मेनिफ़ेस्टो या घोषणापत्र तैयार किया जाता है। आम जनता इन सबको अपने ढंग से आत्मसात करती है ।

सच पूछें तो हमारे शब्दों की दुनिया बड़ी ही विचित्र होती है। वे एक ओर मूर्त और प्रत्यक्ष दुनिया से पहचान (नाम) के रूप में जुड़ते हैं तो दूसरी ओर एक समानांतर दुनिया भी रचते जाते हैं और आगे रचने की सम्भावना भी बनाए रखते हैं । मूलतः वे प्रतीक हैं और इसलिए उनसे हमें तरह-तरह के काम लेना सम्भव हो पाता है। संवाद और संचार का सारा दारोमदार इन्हीं पर होता है। चूँकि आत्माभिव्यक्ति जीने की शर्त है, हम शब्दों से विलग नहीं हो सकते। यह हमारी अपनी रचना है और ऐसी रचना जो हमें रचती जाती है। शब्द एक नई दुनिया का द्वार खोलते हैं। अपरिचित शब्द जब परिचित होता है तो यकायक प्रच्छन प्रकट हो जाता है और निरर्थक सार-गर्भित।

शब्द हमारे अनुभव की सीमा गढ़ते हैं और उसका विस्तार भी करते हैं। कहते हैं संसार में लगभग सात हज़ार भाषाएँ बोली जाती हैं। हर भाषा का अपना सांस्कृतिक संदर्भ है जिसकी परिधि में हम संवेदनाओं को शब्द दे कर उससे जुड़ते हैं। प्रत्येक भाषा हमें अपने यथार्थ को ग्रहण करने, उकेरने और रचने का अवसर देती है। अतः भाषाओं का संस्कार बचाए रखना ज़रूरी है।

वर दे वीणावादिनी वर दे

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

वर दे, वीणावादिनि वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

काट अंध-उर के बंधन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे !

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव;
नव नभ के नव विहग-वृंद को
नव पर, नव स्वर दे !

वर दे, वीणावादिनि वर दे।

१२१ वर्षीय बाबा शिवानन्द

कर्म, ज्ञान, और भक्ति का अनुपम संगम

डॉ. अजय श्रीवास्तव

गुरु की महिमा अपरम्पार है जो ज्ञान की ज्योति दसों दिशाओं में प्रकाशित करती है। अनादि काल से गुरुशिष्य का अटूट सम्बन्ध ज्ञान की निरंतरता को बनाये रखने में सहायक सिद्ध हुआ है। सद्गुरू के चरणकमलों में आश्रय पाकर और ऊँ नमः भगवते वासुदेवाय को अपने जीवन का महामंत्र मान लेने वाले वर्तमान में काशीवासी १२१वर्षीय बाबा शिवानन्द न केवल कर्म, ज्ञान और भक्ति का अनुपम संगम हैं वरन् युवा जैसी उनकी सक्रियता चिकित्सा जगत के विषेशज्ञों और शरीर-क्रिया वैज्ञानिकों के लिए एक पहेली है। बाबा का जन्म वर्तमान बांगलादेश के श्री हट्ट में एक अत्यंत निर्धन बंगाली गोस्वामी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाबा के लिए तीनों लोकों से न्यारी और प्रलय काल में भी स्व-अस्तित्व को सहेज कर रखनें में सक्षम काशी नगरी साधना की तपोस्थली है और कर्म भूमि भी।

आदि शंकराचार्य, भगवान बुद्ध, लाहिड़ी महाशय, बाबा कीनाराम, अवधूत भगवान राम, संत कबीर, तैलंग स्वामी, माता आनंदमयी, संत तुलसीदास सदृष महापुरुषों के लिए यह नगरी या तो जन्मभूमि रही या कर्मभूमि या तो दोनों ही। इन्हीं संतो और तपस्वियों की श्रृंखला में दुनिया के सर्वाधिक बुजुर्ग एवं तपस्वी १२१ वर्षीय बाबा शिवानन्द भी हैं, लेकिन प्रचार-प्रसार से पूर्णतया अछूते होने के चलते बाह्य जगत को उनकी साधना और तपस्या का भान नहीं है। विशाल जन समुदाय तो मुक्ति की कामना लिए इस मोक्ष नगरी काशी में वास कर रही है लेकिन बाबा शिवानन्द के बारे में यह बात ठीक तरीके से नहीं बैठती। 'ष्न त्वं कामये राज्यं न स्वर्ग न पुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणीनामर्तिनाषनम्ष्' ही उनके जीवन का मूल मंत्र है। बाबा का आश्रम प्रत्येक माह दीनदुखियों को अन्न वस्त्र एवं धनादि प्रदान करता है। अनेक बार के निवेदन के तदुपरांत इन पक्तियों के लेखक को अपने बारे में कुछ लिखने की अनुमति दी।

जप-तप व साधना में अनवरत संलग्न दुर्गाकुंडवासी १२१ वर्षीय बाबा शिवानन्द निःस्वार्थ, निष्काम, भक्ति-मार्ग के पथिक हैं। वैष्णव दासानुसाद, भक्ति मार्ग के पथिक, आध्यात्म जगत के साक्षी सदैव आनंदमय बाबा शिवानन्द का जन्म ८ अगस्त १८९६ में वर्तमान बांग्लादेश के जिला श्रीहट्ट, महकमा हरिगंज, थाना-बाहुबल के अन्तर्गत पड़ने वाले हरिपुर में एक गरीब बंगाली ब्राह्मण गोस्वामी परिवार में हुआ था। उनकी माता भगवती देवी एवं पिता श्रीनाथ गोस्वामी परम वैश्णव भक्त थे। बाबा के पितृदेव एवं माता जी द्वार-द्वार घूमकर, मधुकरी करके थोडा-बहुत भिक्षान्न जुटा पाते थे, जिससे वे भगवान नारायण का भोग लगाते थे। इसे प्रसाद मान कर वे इस प्रसाद को अपने पुत्र बाबा शिवानन्द एवं कन्या के संग मिल-बाँट कर खाते थे. सदैव होता यह था कि भिक्षान्न बहुत कम मात्रा में एकत्रित होता था, जो सम्पूर्ण परिवार को भरपेट भोजन दिलाने में सदा असमर्थ रहता था।

सन् १९०१ में बाबा शिवानन्द के माता-पिता ने अपने बालक को नवद्वीप जिले के एक परम तपस्वी वैष्णव संत के हाथों सौंप दिया था, तब से बाबा शिवानंद का जीवन-कमल अपने उपरोक्त सदगुरु ओंकारानंद के आश्रम में खिलने लगा। सदगुरु ओंकारानंद जी एक स्थिरप्रज्ञ, ब्रह्मज्ञानी और त्रिकालज्ञ संत थे। सन् १९०३ में सदगुरु ओंकारानंद जी ने बाबा शिवानंद को अपने माता-पिता से मिलने के लिए घर भेज दिया। घर पहुँच कर

बालक शिवानन्द को ज्ञात हुआ कि उनकी दीदी, कुछ ही दिनों पूर्व भोजन के आभाव में, भूख-प्यास के कारण इस दुनिया से चल बसी थीं।

उनके घर पहुँचने के सात दिनों के बाद एक ही दिन में, पहले सूर्योदय के पूर्व उनकी माता जी ने और बाद में सूर्यास्त के पश्चात् उनके पिता जी ने भी दम तोड़ दिया। इन दोनों देहान्तों ने उन्हें झकझोर दिया और वह बालक शिवानंद दिल से यह समझ गये कि आदमी निराहार से उपजी अपौष्टिकता के कारण तथा चिकित्सा या इलाज के अभाव में मर भी सकता है। मातापिता के श्राद्ध के उपरांत बालक शिवानंद नवद्वीप धाम स्थित गुरु के आश्रम में वापस लौट आये व अपने साथ वह ले आए माता जी द्वारा पूजित शिवलिंग एवं पिता जी द्वारा पूजित शालीग्राम शिला को भी । संसार भर में इन दो सर्वश्रेश्ठ सम्पदाओं को तभी से पहचान लिया था भिक्षु पुत्र बाबा शिवानंद ने। वाराणसी के शिवानंद आश्रम (२५/११, कबीर नगर, दुर्गाकुंड, फोन - ०५४२-२३१०६२०) में उपरोक्त शिवलिंग और शालीग्राम शिला की पूजा आज तक चली आ रही है। सन् १९०७ में बाबा शिवानन्द ने अपने सद्गुरू श्री ओंकारानंद जी से दीक्षा ग्रहण की। सद्गुरू कृपा का अवलम्ब लेकर उनकी जीवन यात्रा अपनी तपस्या की राह पर चल निकली। गुरुदेव ने बालक शिवानन्द की पराविद्या के अभ्यास के संग-संग संसारिक विद्याभ्यास की भी व्यवस्था की। कठोर तपस्या एवं अध्यावसाय के फलस्वरूप बाबा शिवानंद ने अंततः यह उपलब्धि प्राप्त की कि यह सम्पूर्ण दुनिया ही मेरा घर है। यहाँ रहने वाले लोग, मेरे माता-पिता हैं. उनसे प्रेमपूर्ण व्यवहार रखना और उनकी सेवा करना ही मेरा धर्म है।

सन् १९५९ के दिसम्बर मास में गुरुदेव ओंकारानंद गोस्वामी जी ने अपनी देह त्याग दी। गुरु के वियोग में बाबा को गहरा आघात पहुँचा, मगर वह शोक सहन कर सैंकड़ों दुखियारों, पीड़ितों और शोकसंतप्त लोगों की सेवा करने में जुट गये। वर्ष १९७७ की १६ जनवरी को, आसाम के डिब्रूगढ़ से चलकर बाबा वृन्दावन धाम आए। सन् १९७९ में बाबा वृन्दावन से चलकर विश्व की सर्वाधिक पुरानी नगरी, शिव की नगरी, सप्तपुरियों में से एक काशी आ पहुँचे और यहीं निवास करने लगे। शिव की पुजारिन माता जी और नारायण भक्त पिता की भक्ति भावनाओं का खुद भी पालन करते हुए बाबा शिवानन्द अन्य सब देवी-देवताओं की पूजा करते समय शिव और नारायण को अधिक निकटता से अनुभव करते हैं। दिन भर वह जप ध्यान, संसार की मंगल कामना, दान, सेवा और विविध प्रकार के निष्काम कर्मों को सम्पन्न करते हैं। उनके भोजन के मूलपदार्थ हैं – सिर्फ़उबली सब्जियाँ और थोड़ा बहुत अन्न।

वैचारिकता के क्षेत्र में बाबा शिवानंद निर्गुण भक्ति के संत कबीर की भाँति अपने भक्तजनों को बाह्य आडम्बर से सर्वथा दूरी बनाकर निष्काम भाव से अपने कर्तव्यों को पूर्ण करने की सीख देते हैं। उनमें भगवान बुद्ध की करुणा, विवेकानंद की दार्षनिकता, तेजोमय व्यक्तित्व और माता आनंदमयी की मातृसदृष्य भावबोध है। शिवानन्द बाबा जी का जीवन अत्यंत सुंदर है, क्योंकि वह स्वयं सद्गुरू के चरणाश्रित हैं। उनके निकट बैठ कर सिर्फ उन्हें देखना ही हमारे जीवन को धन्य कर देने में सक्षम है। जिस प्रकार वेदों में भगवान शिव को नेति-नेति सम्बोधित किया गया है, उसी प्रकार बाबा गुणातीत हैं।

गीता में वर्णित २६ दैवी सम्पदाएँ जैसे(१) दया (२) दान (३)यज्ञ (४) सत्य (५) लज्जा (६) क्षमता (७) तेज (८) धैर्य (९) त्याग (१०) शान्ति (११) अभय (१२) अहिंसा (१३) तपस्या (१४) शुचिता (१५) स्वाध्याय (१६) सरलता (१७) पवित्रता (१८) क्रोधहीनता (१९) इन्द्रियसंयम (२०) लोभहीनता (२१) ज्ञान व योग में निष्ठा (२२) किसी को हानि न पहुँचाना (२३) अपने आप को सर्वश्रेष्ठ न मानना (२४) चंचलता का त्याग (२५) क्रूरता और (२६) दूसरों की गलती न ढते फिरना - बाबा में रचबस गई हैं। इन्हीं दैवी गुणों को अपने जीवन में उतारकर बाबा शिवानंद सिर्फ इसी साधन में मग्न रहते हैं कि कैसे मानव जाति का भला कर सकूँ। उनके जीवन

का मूल मंत्र है नि:स्वार्थ भाव से की गई सेवा ही ईश्वरोपलब्धि का स्वर्णिम पंथ है। मंदिर में प्रतिष्ठापित मूर्ति में भगवान नारायण की पूजा की अपेक्षा वह मानव सेवा के द्वारा भगवान नारायण की पूजा करने में अधिक आनंद का अनुभव करते हैं। बाबा ने अपने सम्पूर्ण जीवन में कृष्ण भक्ति के मार्ग का वरण किया है। कृष्ण तो समस्त कारणों के कारण हैं। वेदांत सूत्र में कहा गया है कि जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं किया है या जो समस्त कारणों के कारण कृष्ण को नहीं समझता, वह जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता है। वह बारम्बार स्वर्ग को और पुनः पृथ्वी लोक को आता-जाता है मानों वह किसी चक्र पर स्थित है। पुण्यकर्मों के संचित फल से स्वर्ग जा सकता है पर वह फल क्षीण होता है तो पुनः मृत्युलोक आना पड़ता है। बैकुण्ठ लोक की प्राप्ति तो सच्चिदानंद परम पिता परमेश्वर की आराधना से सम्भव है। बाबा का जीवन दर्शन भी यही है। बाबा न तो किसी चमत्कार की बात करते हैं न ऐसा किसी भक्त से अपेक्षा रखते हैं। वे ईश्वरीय विधान में व्यतिक्रम उपस्थित करना अनुपयुक्त समझते हैं।

बाबा शिवानन्द कहते हैं समूची गीता का सार है भक्ति - १२वाँ अध्याय। इसके तारकब्रह्म नाम तथा नारायण वन्दना के नियमित पाठ करने से या कीर्तन करने से सारे क्लेष, रोग, विपदा, आपदाओं आदि से मनुष्य को मुक्ति मिल जाती है। बाबा शिवानंद के आध्यात्मिक विचार हैं - (१) सत् चिंतन, सत्कर्म और सद्भावना (२) प्राणियों की नि:स्वार्थ सेवा ही ईश्वर प्राप्ति का सुगम मार्ग है (३) भक्तियोग, तारकब्रह्मनाम एवं नारायण वंदना का नियमित पाठ करने से या कीर्तन करने से समस्त क्लेष तथा आपदा-विपदाओं से मुक्ति प्राप्त हो जाती है एवं शांत जीवन प्राप्त होता है (४) सदा प्रेम करो, घृणा कदापि नहीं।

ऐसे तेजस्वी, परमदयालु, नि:स्वार्थ निष्काम भक्ति मार्ग के अनुयायी एवं शिव व नारायण के परम भक्त, सर्वप्रकार की कामना व विकार मुक्त बाबा शिवानन्द को मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।

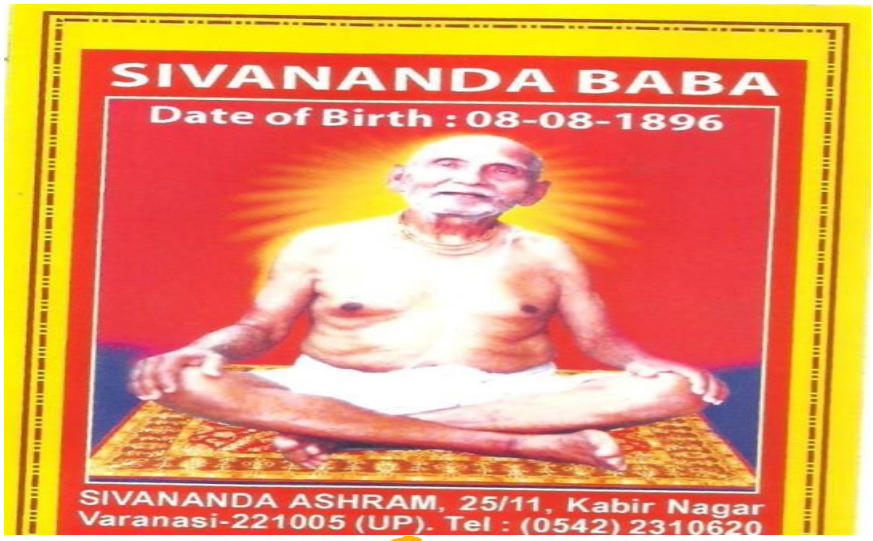

अपनी गंध नहीं बेचूँगा

बाल कवि बैरागी

(प्रसिद्ध गीतकार बलकवि बैरागी जी का जन्म मंदसौर, जहाँ दो वर्ष मैंने भी कॉलेज शिक्षा प्राप्ति हेतु बिताये थे, जिले की मनासा तहसील के रामपुर गाँव में, मध्य प्रदेश में हुआ था. १३ मई २०१८ को उनके देहावसान का दु:खद समाचार मिला. उन्हीं की कविता उन्हीं को श्रद्धांजलि-रूप में समर्पित – सम्पादक)

चाहे सुमन बिक जाएँ,
चाहे उपवन बिक जाएँ,
चाहे सौ फागुन बिक जाएँ,
पर मैं अपनी गंध नहीं बेचूँगा - अपनी गंध नहीं बेचूँगा।

जिस डाली ने गोद खिलाया, जिस कोंपल ने दी अरुणाई,
लक्ष्मन जैसी चौकी देकर, जिन काँटों ने जान बचाई,
इनको पहला हक़ जाता है, चाहे मुझको नोंचें, तोड़ें,
चाहे जिस मालिन से मेरी पाँखुरियों से रिश्ते जोड़ें,
ओ मुझ पर मँडराने वालों,
मेरा मोल लगाने वालों,
जो मेरा संस्कार बन गई, वो सौगंध नहीं बेचूँगा।

मौसम से क्या लेना मुझको ये तो आएगा-जाएगा,
दाता होगा तो दे देगा, खाता होगा खा जाएगा,
कोमल भँवरों का सुर-सरगम, पतझरों का रोना-धोना,
मुझ-पर क्या अंतर लाएगा पिचकारियों का जादू-टोना,
ओ नीलाम लगाने वालों,
पल-पल दाम बढ़ाने वालों,
मैंने जो कर लिया स्वयं से वो अनुबंध नहीं बेचूँगा।

मुझको मेरा अंत पता है, पंखुरी-पंखुरी झर जाऊँगा,
लेकिन पहले पवन-परी संग एक-एक के घर जाऊँगा,
भूल-चूक की माफी लेगी सबसे मेरी गंध कुमारी,
उस दिन मंडी समझेगी किसको कहते हैं खुद्दारी,
बिकने से बेहतर मर जाऊँ,
अपनी मिट्टी में झर जाऊँ,
मन से तन पर लगा दिया जो वो प्रतिबंध नहीं बेचूँगा।
अपनी गंध नहीं बेचूँगा।

आस, निराश भई

आप-बीती (संस्मरण)

डॉ. एम.एल. गुप्ता 'आदित्य'

अन्य दिनों की भाँति ही १४ मार्च, बुधवार को भी सही वक्त पर हम आईसीयू में पहुँचे। गेट खुलते ही उस दिन भी सबसे पहले मैं पहुँचा। आईसीयू में मिलने जाने के नियम बड़े कड़े हैं। सिर पर टोपी, मुँह पर मास्क और पाँव में जूते चप्पल के नीचे भी कवर जैसा पहनना पड़ता है। इस कारण कई बार सामने वाले को पहचानने में कठिनाई होती थी। और फिर जो बीमार और बेसुध है, उसके लिए तो और भी कठिन है। इसलिए मैं वहाँ पहुँचकर अक्सर अपना मास्क नीचे कर देता था ताकि वह मेरी आवाज सुन सके और अगर वह आँख खोलें तो उसे मुझे पहचानने में दिक्कत न हो ।

जैसे ही मैं वहाँ पहुँचा और मैंने कहा, 'जान देखो, मैं आ गया हूँ।' मेरी आवाज़ सुनते ही उसमें बिजली-सी कौंधी। उसने मेरी तरफ गर्दन घुमाई । मैंने देखा, पहली बार, उसकी बाईं आँख थोड़ी खुल रही थी। । मैं चौंका, 'जान तुम्हारी आँख तो खुल रही है, थोड़ी कोशिश तो करो, पूरी आँख खुल जाएगी।' मैं अपनी उँगलियों के सहारे से उसे आँख खोलने में मदद करने लगा। तब तक नजर पड़ी, उसकी दाईं आँख पूरी तरह खुली हुई थी। मेरे आश्चर्य और खुशी का ठिकाना ना रहा। मैंने कहा,' अरे जान, तुम देख पा रही हो। मुझे देखो, देखो मैं आया हूँ। देखो तुम्हारी दोनों आँखें खुल रही हैं, अरे बड़ी हिम्मत की है तुमने। मुझे देखो जान, देखो जान।' वह आँखों की पुतलियाँ घुमाते हुए मेरी ओर देखे जा रही थी। 'वाह! आज तो तुम दोनों हाथ भी उठा रही हो, बहुत खूब। 'मैंने उसका उत्साह बढ़ाया। मैंने देखा आज उसके चेहरे पर खास तरह की चमक थी लेकिन आँखों में दर्द और बेचैनी साफ पढ़ी जा सकती थी। उसकी पीड़ा को सोचते ही भीतर एक तूफान सा उठता था और आँखों के बादल बरस जाते।

उसकी सम्भावित चिंताओं को दूर करने के लिए मैंने कहा, 'तू सुन रही है ना। उत्कर्ष और सोनू बहुत समझदार हो गए हैं। दोनों अपना ही नहीं मेरा भी बहुत ख्याल रख रहे हैं। चिंता मत कर, जल्दी से अच्छी तरह ठीक हो जा। हम चारों जल्दी ही मुम्बई वापस जाएँगे।' यह कहते-कहते मेरी आँखों से अश्रुधारा बह उठी। ये खुशी के आँसू थे।

डॉक्टर आ गए थे। मैं उनकी तरफ मुड़ा और कामिनी की तबीयत पूछने लगा। डॉक्टर ने कहा, 'हाँ चेतना तो बढ़ी है, आँखें भी खुल गई हैं। वह सब देख-समझ भी रही हैं। लेकिन एक बात कहूँ, खतरे से बाहर अभी भी नहीं हैं। उनका रक्तचाप अभी भी नियंत्रण में नहीं आ रहा है। लिवर काम नहीं कर रहा है। एक बार स्थिति बिगड़ी तो अन्य अंग भी उसकी चपेट में आ जाएँगे।', भीतर की खुशी मायूसी में बदल गई। मैंने लगभग गिडगिड़ाते हुए कहा, 'डॉक्टर साहब अब जो भी कर सकते हैं, आप ही कर सकते हैं । जो भी सम्भव हो कीजिए, इनकी जान बचा लीजिए।' बिना उत्तर सुने मैं कामिनी की तरफ मुड गया।

अचानक मुझे कामिनी की बहुत पतली और कमजोर-सी आवाज सुनाई दी। उसने कहा 'सोनू'। मैं चौंका! ऑक्सीजन मास्क लगे होने के बावजूद और शरीर में तनिक भी ताकत न होने के बावजूद उसने किस तरह हिम्मत करके बेटी को पुकारा होगा? एक शब्द से आगे उसकी आवाज न निकली। उसने मास्क लगे होने के बावजूद एक शब्द भी कैसे निकाला, यह समझ से परे था। बच्चों से मिलने की उसकी तड़प को मैंने भाँप लिया।

'मैं हड़बड़ाते हुए एक बार फिर डॉक्टर की तरफ मुड़ा, 'डॉक्टर साहब, डॉक्टर साहब! देखो बच्चों की माँ अपने बच्चों को बुला रही है। प्लीज, प्लीज उन्हे भी अंदर आने दीजिए। डॉक्टर ने हालात को समझते हुए कहा, 'ठीक है बुला लीजिए।'

मैं लगभग दौड़ता-सा बाहर की तरफ गया और भाई से कहा, 'दोनों बच्चों को जल्दी अंदर भेजो।' ड्यूटी पर तैनात कर्मचारी ने विरोध किया और कहा कि एक बार में एक ही व्यक्ति अंदर जा सकता है। 'डॉक्टर से पूछ लिया है, तुम चाहो तो पूछ लो, उन्होंने अनुमति दे दी है।' मैंने उसे समझाया। डॉक्टर से पुष्टि करने के बाद उसने दोनों बच्चों को अंदर आने दिया। उत्कर्ष और सोनू दोनों बच्चे और मैं उसके बिस्तर के दोनों तरफ खड़े हुए थे। कुछ कहने के लिए वह बार-बार अपने मास्क को हटाने की कोशिश कर रही थी, लेकिन उसके बस में न था। वहाँ एक नर्स खड़ी थी मैंने उससे अनुरोध किया है सिस्टर हो सके तो एक मिनट के लिए ही सही, ऑक्सीजन मास्क हटा दो। देखो ना, माँ अपने बच्चों से कुछ कहना चाह रही है, प्लीज।'

नर्स को दया आ गई। उसने कहा, 'ठीक है हटा देती हूँ।' फिर अचानक उसका विचार बदला उसने कहा, 'आप दोपहर बाद आएँगे तब हटा दूँ तो ?' घबराई-सी बेटी सोनू ने कहा, 'ठीक है चलिए शाम को हटा देना।' वह डर रही थी कि कहीं ऑक्सीजन मास्क हट जाने से कोई मुश्किल न पैदा हो जाए। लेकिन कामिनी अभी भी बार-बार मास्को को हटा कर कुछ कहने के लिए कोशिश कर रही थी। असफल होते ही दोनों हाथों को जोड़ लेती थी। कभी-कभी लगता था कि वह दोनों हाथ जोड़कर हमें आखरी प्रणाम कर रही है। उसकी कातरता देख कर आँखें भर आती थीं। लेकिन वहाँ रोने की अनुमति भी तो न थी। देखते ही देखते एक घंटा बीत चुका था और अस्पताल के नियमों के अनुसार आईसीयू में रुकना सम्भव न था। सीने पर पत्थर रखते हुए मैं बाहर की तरफ लौट आया। मेरी हालत पर तरस खाकर कर्मचारी मुझे समय से ५ मिनट अधिक रुकने का समय तो पहले ही दे चुके थे।

लगातार मेरे ज़ेहन में एक ही बात आ रही थी कि इस हालत में किस प्रकार आई.सी.यू. में वह एकदम अकेले बीमारी से जूझ रही होगी। न तो वह किसी से अपना दर्द कह सकती थी और न ही अपने किसी को देख सकती थी। आईसीयू के एक बिस्तर पर वह मौत से जूझ रही थी, एकदम अकेले। सोचकर ही कलेजा मुँह को आता था। लेकिन इस बात की खुशी भी थी कि आज उसे होश आ गया है तो स्थिति में और सुधार होने की सम्भावना बन गई है। इसीके चलते कई दिन बाद मैंने उस दिन खाना ठीक से खाया।

सुबह के बाद दोपहर ४:०० से ५:०० तक का मिलने का समय होता था। निगाहें तो घड़ी पर ही थी कि कैसे ४:०० बजें और मैं दौड़कर उसके पास जाऊँ। जैसे ही अनुमति मिली टोपी, मास्क वगैरह पहन कर मैं दौड़ते हुए उसके पास जा पहुँचा। मेरी आहट सुनते ही एक बार फिर उसके शरीर में बिजली-सी दौड़ी। अब भी लगभग वही स्थिति थी। आँखें खुली थी पर वह कुछ कहने के लिए बार-बार मास्क को हटाने की कोशिश कर रही थी। उसकी बेचैनी और बढ़ गई थी। कुछ न कह पाने की उसकी बेबसी आँखों से टपक रही थी। आखिरकार मैंने ड्यूटी पर तैनात डॉक्टर से अनुरोध किया, 'डॉक्टर साहब, वो कुछ कहना चाह रही है। एक मिनट के लिए मास्क हटा सकें तो!' मैंने फिर कहा, 'सिस्टर ने कहा था शाम को एक-दो मिनट के लिए ऑक्सीजन मास्क हटा देंगे, देखो, देखो वह कुछ कहना चाह रही है।' 'यह सम्मभव नहीं है।' डॉक्टर ने मुझे समझाते हुए कहा, 'देखिए पेशेंट की स्थिति ठीक नहीं है हमें ऑक्सीजन का लेवल बढ़ाना पड़ा है। ऐसे में ऑक्सीजन मास्क हटाना रिस्की है। हम मास्क नहीं हटा सकते।' डॉक्टर की बात सुनकर जैसे मुझ पर वज्रपात-सा हो गया, उसकी तड़प देखकर व, 'क्या उसके मन की बात मन में ही रह जाएगी।' सोचकर मन बहुत उदास हो गया ।

लेकिन कामिनी की कुछ कहने की तड़प जारी थी। पस्त होने पर भी वह बार-बार लगातार कुछ कहने के लिए मास्क हटाने की कोशिश कर रही थी। वह कुछ कहना चाह रही है, लेकिन कह नहीं पा रही यह सोचकर

ही दिल बैठ रहा था। आखिर में दोबारा फिर जाने के लिए मैं बाहर आ गया ताकि अन्य लोग भी उससे मिल सकें।

डॉक्टरों की राय के अनुसार हम आज ज्यादा रिश्तेदारों को अंदर नहीं जाने दे रहे थे । डॉक्टर का कहना था, 'आपकी पत्नी तो आपको, आपके बच्चों को और बहुत करीबी लोगों को ही देखना चाहेंगी। आप तो भीड़ लगा रहे हैं यहाँ।' उसके माता-पिता और मेरे माता-पिता, भाई के मिलने के बाद एक बार फिर मैं वहाँ पहुँचा। बेटी भी वहीं थी। बेटा मिल कर जा चुका था। बेटी ने अपनी माँ से कहा, 'मम्मी, अब मैं जाती हूँ। मिलने के लिए सुबह आऊँगी।' यह कहते हुए वह बाहर की तरफ जाने लगी। उसके इस कथन पर मैंने देखा कामिनी बेचैन हो गई। उसने जवाब में न जाने के लिए गर्दन हिलाई। जैसे ही मैंने यह देखा मैंने बेटी को आवाज देकर रोका। 'रुको, रुको बेटा रुको, लौट आओ, मम्मी बुला रही है।' वह लौट आई। ऐसा लगा जैसे कामिनी की साँसे लौट आई हों। लेकिन अस्पताल में भावनाओं की नहीं नियमों की चलती है। बेटी अंततः कुछ देर बाद बाहर चली गई।

मिलने का समय समाप्त हो रहा था, कुछ मिनट ऊपर ही हो चुके थे। मैं निरंतर आँसुओं को सँभालते हुए कामिनी से बातें कर रहा था। मैंने उससे कहा, 'जान मैं क्या करूँ डॉक्टर तो मास्क नहीं हटा रहे। चिंता मत करो। सब ठीक हो जाएगा।' उधर से कोई जवाब नहीं आ रहा था। मैं बोलता जा रहा था। केवल आँखों की प्रतिक्रिया से मैं बातों को आगे बढ़ा रहा था। 'मैं बच्चों का ध्यान रख रहा हूँ। तेरी मम्मी-बाबूजी और माँ-पिताजी, भाई-भाभी सभी तेरा इंतजार कर रहे हैं। सब नीचे बैठे हैं तेरे इंतजार में। बच्चे मेरा बहुत ध्यान रख रहे हैं। सब ठीक हो जाएगा। हम तेरा इंतजार कर रहे हैं जल्दी ठीक हो जा। हिम्मत रख, सब ठीक हो जाएगा।'

इतने में अस्पताल का कर्मचारी मुझे बुलाने के लिए आ गया था उसने कहा, 'सर देखिए समय हो चुका है। अब आप बाहर चलिए।' आखिरकार मैं जान से विदा लेने लगा। मैंने कहा, 'जान अब तो मुझे जाना पड़ेगा। क्या करूँ, अस्पताल वाले रुकने ही नहीं दे रहे। कल सुबह फिर तुझसे मिलने आऊँगा। मैं जाऊँ ना?' मैंने पूछा। आँखों में कातरता लिए उसने 'ना' में अपनी गर्दन हिलाई और उसके साथ ही आँखों की दोनों छोरों पर आँसुओं की बूँदें उभर आईं। उसकी बेबसी आँखों से टपक रही थी मानो आँखों से गिड़गिड़ा कर, रो कर मुझे रोक रही है और कह रही है, 'मेरे पास ही रहो, मत जाओ ना।' वह मुझे जाने से रोक रही थी लेकिन अस्पताल के नियमों का पालन करते हुए बेबसी में मैं आँसुओं को रोकते हुए एक बार फिर मैंने पलट कर उसकी तरफ देखा और धीरे-धीरे कमरे से बाहर आ गया। बाहर आते-आते धैर्य का बाँध टूट चुका था, आँसुओं का सैलाब बह चला था।

नीचे मिलने वाले परिजनों की भी काफी भीड़ थी। आशा-निराशा, दर्द, आशंका और भावनाओं के भँवर के बीच डूबता-उबरता-सा मिलने वालों से बातें कर रहा था। उनके सहानुभूति के शब्द भी मानो जख्म को कुरेद देते और किसी तरह रोक कर रखे आँसुओं के बाँध को तोड़ देते थे।

जहाँ एक ओर दर्द था, वहीं उम्मीद भी जाग उठी थी। उसने आज न केवल आँखें खोली थीं बल्कि वह हाथ-पाँव भी हिला पा रही थी और हर बात का गर्दन हिला कर प्रत्युत्तर भी दे रही थी। हालाँकि डॉक्टर की बातें आशंकाओं को भी जगा रही थीं। डर भी बना ही हुआ था। आशा और निराशा के झौंके मन को बेचैन किए हुए थे।

छोटे भाई सतीश ने कहा, 'अब घर चलो बैठने का तो कोई फायदा नहीं है। ऊपर आई.सी.यू.में. तो कोई जाने न देगा। मैं रुक जाता हूँ।' रोज की भाँति मैं घर लौट आया। भतीजे पुलकित के साथ दुबारा एक बार अस्पताल जाकर आना था। यह तो मैं जानता था कि मिलने के समय के अलावा तो कोई मिलने नहीं देता फिर भी दिल की तसल्ली के लिए एक बार जाता था। भतीजा देर पर देर किए जा रहा था। उधर मेरी बेचैनी बढ़ रही थी।

आखिरकार अस्पताल जाने के लिए हम बाहर निकले। देखा पिताजी आँगन में अँधेरे में अकेले कुर्सी पर बाहर बैठे थे। इतने मच्छरों में अँधेरे में वे अकेले बाहर क्यों बैठे हैं? मुझे कुछ अजीब-सा लगा। मैंने पूछा, 'आप अकेले बाहर क्यों बैठे हैं?' 'यूँ ही' उन्होंने छोटा-सा उत्तर दिया और चुप हो गए। जाने की जल्दी में मैंने भी बहुत ध्यान नहीं दिया। गाड़ी में बैठे-बैठे मैंने कामिनी का मोबाइल देखना शुरु किया। उसके व्हाट्सैप संदेशों में मैंने एक संदेश देखा जो उसने बेटी को उस दिन भेजा था जब हम दिल्ली के लिए चलने वाले थे और उसकी तबीयत काफी खराब हो चुकी थी। उसने लिखा था, 'सोनू आई लव यू। अपना और सबका ख्याल रखना। मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहूँगी।'

संदेश पढ़कर मैं चौंका, 'उस दिन जब उसकी आवाज बंद हो रही थी हाथों ने उठना बंद कर दिया था, ऐसे में उसने किस तरह से इस संदेश को टाइप किया होगा? संदेश पढ़ कर एक बार मैं फिर भावनाओं में बह उठा था। उसकी जीवटता और हमारे प्रति उसकी चिंता व स्नेह का ऐसा प्रतिमान था जिसे समझ पाना भी कठिन था।

सोचते-सोचते हम जल्द ही अस्पताल पहुँच गए। सामने छोटा भाई सतीश और उसके दो-तीन दोस्त लॉन में ही खड़े हुए थे। गाड़ी से उतर कर उनकी तरफ बढ़ा तो भाई ने कहा, आ जाओ भाई, फिर संयत होते हुए अचानक उसने कहा, 'भाई, भाभी चली गई। 'लगता था अचानक पूरा आसमान मेरे ऊपर आ गिरा। एकाएक किसी ने मेरी पूरी दुनिया छीन ली।'

मैं कामिनी से मिलने के लिए पागलों की तरह अस्पताल की तरफ दौड़ा। ऊपर पहुँच कर मैं चिल्लाया, मुझे जल्दी मिलवाओ, जल्दी मिलवाओ भाई। लगता था शरीर की सारी शक्ति खत्म हो गई है। चिल्लाने की ताकत भी नहीं। मुझे लगा था कि वह अभी आई.सी. यू. में अपने बिस्तर पर होगी। हम आई.सी.यू. के बाहर खड़े थे। क्रंदन करते हुए मैंने कहा, 'जल्दी दिखाओ' छोटे भाई ने कहा, 'मिलवाते हैं रुको तो सही।' वहीं बगल में एक बड़ा- सा बॉक्स भी रखा था। अचानक एक कर्मचारी ने बक्से को खोल दिया। उसमें मेरी जान एक कपड़े में लिपटी हुई पड़ी थी। उसकी नाक और मुँह में रूई ठूँस दी गई थी। बड़ी बेअदबी से मेरी जान को एक बॉक्स में लिटा रखा था। यह बेहद तकलीफदेह और असहनीय था। यह दृश्य देख ऐसा लगा कि मेरे पूरे शरीर में एक साथ करोड़ों बिच्छू डंक मार रहे हों। दिमाग साथ छोड़ रहा था, कुछ सूझ नहीं रहा था। निराशा और विषाद में भरा मैं छटपटा रहा था।

सब कुछ समाप्त हो चुका था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मेरे शरीर से मेरी जान निकल गई है और मैं मृत हो चुका हूँ। दिन में जगी आस रात होते-होते पूरी तरह निराशा में बदल चुकी थी।

मै कौन हूँ?

डॉ. शशि ऋषि

ख़ुद को ख़ोज रहा हूँ,
मेरी पहचान क्या है?
अस्तित्व का कारण क्या है?
अंतरात्मा की पुकार क्या है?

न हिन्दू हूँ न मुसलमान हूँ
पैदा हुआ एक इंसान हूँ
गल्तियों का एहसास है
इनका पश्चाताप भी है

अंतरात्मा से निकली आवाज़ सुनता हूँ
अमल करने की कोशिश करता हूँ
प्रयत्न करता हूँ एक नेक इंसान बनूँ
वक्त बेवक्त लोगों के काम आ सकूँ

संसार में अनगिनत जीव-जंतु हैं
भाग्य से मनुष्य जन्म मिलता है
यह पूर्व जन्म का परिणाम है
इस जीवन के पश्चात् क्या है?

मानव-जीवन फिर मिले न मिले
नेक कर्म कर लें नहीं तो पछताएँगे
यही मेरे मार्ग-दर्शन की किरण है
सत्कर्म ही मेरा धर्म है, मंगल-पथ है.

बैधा

दिलीप कुमार सिंह

ये बहुत ही हैरतअंगेज खबर थी जिसने भी सुना वो सुना वो सन्न रह गया। जिसने सुना वो उधर ही दौड़ा। गालिबन कुछ लोगों ने बेफ्रिकी से कंधे भी उचकाये मगर कुछ लोगों को किसी अनहोनी का खटका भी हुआ। लोग बदहवास से उस तरफ दौड़े, जिधर से आवाजें आ रही थीं। औरतें, बच्चे वहाँ पहले से जमा थे, गाँव के बड़े-बूढ़े वहाँ तेज-तेज कदमों से चलते हुये पहुँचे। कुएँ के जगत के पास दोनों भाई गुत्थम-गुत्था थे। उन दोनों लड़ाकों के शरीर नुचे हुये थे और खून से लथपथ थे फिर भी वे गुत्थम-गुत्था थे और एक दूसरे पर ताबड़-तोड़ प्रहार किये जा रहे थे। बगल में पड़े तीसरे भाई वासुदेव की लाश पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। अर्थी का सारा सामान भी वहीं रखा था। बमुश्किल लोगों ने लड़ रहे दोनों भाईयों को अलग किया। दोनों लड़-लड़कर पस्त हो चुके थे। पूते की साँसे बहुत तेज-तेज चल रही थीं. ऐसा लगता था कि मानों वो अभी दम तोड़ देगा। पूते की पीड़ा का ये अंतहीन सिलसिला साल भर पहले ही शुरू हुआ था जब साल-भर पहले भगतिन पंडिताइन को साँप ने डस लिया था जो कि पूते की माँ थीं। भगतिन उसी दिन भगवान को प्यारी हो गयी थीं। पंडित बालकिशन भगत अनन्य शिवभक्त थे। शिव उनके कुल देवता और आराध्य देवता भी थे। दोनों जून शिव की स्तुति। खेती किसानी के अलावा वे दरवाजे पर स्थापित शिवलिंग को भी खासा समय देते थे। गाँव से मील भर दूर टयूब्बेल आपरेटर की नौकरी का भी वो अच्छे से निबाह कर रहे थे। भगत पंडित दोनों जून शिवलिंग का पूजा पाठ करते। साँप, गोजर, गोह, नेवला सब शिवलिंग के इर्द-गिर्द मड़राते रहते थे। शिव उनके आराध्य तो शिव के बाराती सब जीव-जन्तु भगत को अपने ही लगते थे। फिर भी भगतिन को डसा था एक साँप ने। ये और बात थी कि उस अधमरे साँप को चील के पंजे से बचाया था भगत ने कई बरस पहले। सालों से वो साँप शिवलिंग के इर्द-गिर्द ही रहता था। अगर खौलते दूध की हाँड़ी न गिरती तो शायद साँप भगतिन को डसता भी नहीं। खपड़ा, पक्का, अटारी पर वो साँप लटकता रहता था। किसी का पैर पड़ गया तो भी उस साँप ने उसको न डसा। एक दिन भगतिन दूधहंडी का खौलता हुआ दूध चूल्हे से हटाकर ओसारे में रखने जा रही थी। अचानक उनको जोर की ठोकर लगी कि भगतिन हांडी के साथ भहरा कर गिरी, उनका भी हाथ पैर झुलस गया। मगर हांडी सहित भगतिन को अपने उपर गिरते देख साँप ने इसे अपने उपर हमला समझा। पलक झपकते ही खौलते दूध से साँप भी नहा गया। साँप की त्वचा जल गयी क्रोध में साँप ने हाथ पैर पटक कर छटपटाती हुई भगतिन को लिपट-लिपट कर काटा, नोच-नोचकर काटा। भगतिन के प्राण पखेरू उड़ गये। भगतिन की मृत्यु से भगत पंडित बहुत आहत हुये। उन्हें इस बात का बहुत मलाल था कि उनके गुरूभाई सर्प ने उनकी पत्नी को डस लिया। भगत की मान्यता थी कि वे भी शिवभक्त और साँप भी शिवभक्त तो इस हिसाब से वे और साँप गुरूभाई हुये। मृत्यु को तो उन्होंने विधि का विधान माना मगर सर्प के दंश को गुरूभाई का विश्वासघात माना। भगत शिवस्त्रोत करते, सर्प को कोसते, उसके समक्ष धर्म और नीति पर ऐसे शास्त्रार्थ करते मानो वो मनुष्य हो। जला, कटा, चमड़ी से उधड़ा हुआ सर्प वहीं पड़ा रहता। उसी चौखट पर सर्प को गाँव के लोगों ने काल कहकर मारना चाहा, मगर भगत ने शास्त्रार्थ करने के लिये जीवित रखने को कहा। "अपने पाप मरैं अपकारी" की तर्ज पर उन्होंने सर्प को मारने के बजाय मरने देना उचित समझा। वे घायल, अधमरे सर्प से हमेशा कुछ न कुछ कहते रहते थे। सर्प, भगत की तरह ज्ञानी पंडित न था। जीव-जन्तु की अपनी दुनिया होती है। अपनी ही धुन के पक्के भगत द्वारा शास्त्रार्थ का जवाब न पाये जाने पर उन्होंने आजिज होकर सर्प को उठा लिया और उसके मुँह में हाथ

डालकर विषधर से खुद को कटवा लिया। गालिबन उन्होंने खुद को डसवाया नहीं था बल्कि अपने प्राणों का अन्त करके उन्होंने अपने गुरूभाई को दोहरे पाप का दंश दिया था कि भगत-भगतिन की हत्या गुरूभाई के मत्थे। भगत को इतना क्रोध था कि उन्होंने अपने तीनों बेटों की भी चिन्ता न की जो कि उनके बिना कहीं-न-कहीं आधे-अधूरे थे। उनका बड़ा बेटा मंगल एक नम्बर का चरसी, गंजेड़ी और दारूबाज। जूता-चप्पल से लेकर धान-गेंहूँ तक बेच डालता। किसी तरह भगत की कर्माही हो गयी। उनके बगल के अधियार कमल ने ही सब कुछ किया। कमल वकालत के अंतिम वर्ष में था कमल के बड़े भाई जलज की मृत्यु कुछ वर्ष पहले सर्पदंश से हो गयी थी। तब उसकी गोद में एक दुधमुँही बच्ची सोनी थी और उसकी भाभी का जीवन बेहद भयावाह हो चला था। कमल, उस बच्ची सोनी का पालन-पोषण करने लगा। कमल ने अपनी भाभी का दूसरा विवाह नदी पार करा दिया था। सोनी को ल्यूकोडर्मा (सफेदा) था जिससे उसके माँ के दूसरे पति ने उसे साथ ले जाने से इंकार कर दिया था क्योंकि सफेदा को वो कोढ़ और अपलक्ष्य मानता था। ये बात कमल के लिये तुरूप का इक्का साबित हुई। अपनी भाभी का विवाह करते समय उसने बड़ी चालाकी से उस अबोध बच्ची का गोदनामा अपने नाम लिखवा लिया था। इस मास्टर स्ट्रोक से उसने न सिर्फ अपनी भाभी को रास्ते से हटाया था बल्कि कानूनन सोनी को अपनी बेटी बनाकर उसके हिस्से की जायदाद भी प्राप्त कर ली थी। अब कमल की नजर उसके अधिकार भगत की सम्पत्ति पर थी। विधि के लेखी के आगे किसकी चली है समय ने ऐसी पलटी मारी की दूध की एक हांडी की फिसलन से कुछ दिनों के अंतर पर भगत-भगतिन दोनों स्वर्ग सिधार गये। भगत के घर में रह गये बस तीन रंड-मुंड।

भगत के बड़े पुत्र मंगल की किडनी नशे के कारण लगभग खतम थी, चलते थे तो दम फूल जाता था और खाँसते तो लगता था कि जान निकल जायेगी। भगत के गुजरते ही उन तीनों अधपागल भाईयों ने अधमरे सर्प को पीट-पीटकर मार डाला था। पूते उसे दफनाना चाहता था क्योंकि कभी उसके माता-पिता का अनुराग उस सर्प पर रहा था भले ही वो सर्प उन दोनों की मृत्यु का कारण रहा हो। एक महीने के ही भीतर दो-दो तेरहवी और कर्माही देखी थी उस घर ने। भगत की नौकरी के अभी दो साल बाकी थे। अगर उन्होंने खुद सर्पदंश न करवाया होता तो आज वे जीवित होते और खुद अपने इन विशिष्ट बच्चों को पाल-पोस रहे होते। शिव के अनन्य भक्त भगत इतने शिवप्रेमी थे कि उन्होंने अपने बच्चों के नाम शिवकुमार, शिवप्रसाद और शिव प्रकाश रखे थे। शिवकुमार जो अल्लाम नशेड़ी था, उसने बमुश्किल आँठवी तक पढ़ाई की थी, गाँव-जँवार में उसे मंगल के नाम से भी जाना जाता था। दूसरा शिवप्रसाद जो कि पूते के नाम से जाना जाता था वो बौना था और शारीरिक रूप से बेहद कमजोर। करीब साढ़े चार फुट का कद, चालीस किलो के आसपास वजन छोटे-छोटे हाथ-पाँव मगर पेट बहुत बड़ा सा। पूरा बचपन वो बहुत सी असहाय बीमारियों को ढोता रहा था नतीजन न उसके शरीर का विकास हुआ न उसकी बुद्धि का। विद्यालय, भैंसवारा, खेलकूद हर जगह उसके कमजोर शरीर का मजाक उड़ाया गया तो उसने कहीं आना-जाना भी छोड़ दिया। बचपन से अक्सर वो अपनी माँ के ही आसपास रहा करता था। उन्हीं का हाथ बँटाता, चौका-बर्तन, नादा-सानी में उसके बहुत बरस ऐसे ही बीत गये थे। उसने गाँव से बाहर अकेले शायद ही कभी कदम रखा हो, हमेशा माँ बाप के संरक्षण में ही पला बढ़ा। लोग उसे पूते या बढ़े हुये पेट के कारण पेटबली भी कहा करते थे। पूते अज्ञानी था मगर बेवकूफ नहीं। तीसरे हजरात शिवप्रकाश उर्फ गोंजे जो कि जन्म से ही पूर्ण विक्षिप्त था। हट्टा-कट्टा शरीर, थाली भर भोजन और नदी नौखान में घंटो स्नान यही उसका प्रिय शगल था। कड़कड़ाती माघ-पूस में जूता-चप्पल कभी न पहनने वाला गाँजे भूख का गुलाम था। उसे भूख सताती थी तो वो पागल हो जाता था। ये और बात थी कि उसे भूख हमेशा सताती ही रहती थी। उसे भरपेट भोजन दो तो एवज में उससे कुछ भी करवा लो और इसी भरपेट भोजन पर नजर थी कमल की। भगत जब राम को प्यारे हुये तो फिर पूरी तासीर बदल गयी। कमल जानता था कि भगत के तीन एकड़ खेत से ज्यादा जरूरी

था ट्यूबवेल आपरेटर की मृतक आश्रित नौकरी जिसका तनख्वाह अब पच्चीस हजार से ज्यादा थी। ये नोटबंदी के बाद के देश के हालात में काफी दिलफरेब रकम थी। तीन सालों की वकालत सात सालों में पास करने वाला कमल अपने सगे भाई की सम्पत्ति तो हथिया ही चुका था अब उसकी नजर उसके चाचा भगत की सम्पत्ति पर थी। भाभी का विवाह और भतीजी सोनी के गोदनामे के बाद अब उसके हाथ में उसके चाचा का केस था। कमल शायद नक्षत्र का बली था। भगत-भगतिन स्वर्गवासी हो चुके थे। गाँव कयासों और अंदेशों में उलझा हुआ था। अल्लाम नशेड़ी शिवकुमार की नौकरी की अर्जी की तैयारी की जा रही थी। कमल और उसकी पत्नी ही इन आधे-अधूरे भगतपुत्रों को खाना पानी दे रहे थे। गाँव खत्म होते ही नदी का बन्धा था, बन्धे के बाद कछार और फिर गहरी नदी। गाँव में थोड़ी- सी ही उपजाऊ जमीन थी सो कोई जमीन से मिट्टी निकालने नहीं देता था। गाँव का इकलौता तालाब गाँव से एक मील की दूरी पर था इसलिये लोग मिट्टी निकालने के लिये नदी के तट का ही प्रयोग किया करते थे। लेकिन नदी में आम तौर पर लोग नहाते-धोते नहीं थे क्योंकि नदी में चंद्र फटा था और उस थोड़ी दूर तक नदी अथाह गहरी थी। शिवप्रसाद को नशे की लत बैठने नहीं देती थी। एक रात चुपके से उठकर उसने अनाज की डेहरी तोड़ दी और सारा अनाज बेच डाला। तीनों भाईयों में खूब गाली-गलौज मार-पीट हुई जिसे अंत में कमल ने शांत कराया। मृतक आश्रित की नौकरी की फाइल इस दफ्तर से उस दफ्तर घूम रही थी महज अब कुछ दिनों की देर थी नौकरी मिलने में। गाँव-गँवार में चर्चा थी कि ये नौकरी अगर पूते को मिल जाती तो ठीक था। तीनों भाई कम से कम जिंदा तो रहते क्योंकि एक नशेड़ी था तो दूसरा विक्षिप्त, तीसरा पूते कमजोर था मगर बुद्धि बहुत खराब नहीं थी उसकी। मगर गाँव क्या चाहता था और कमल क्या चाहता थ इस बात में बड़ा फर्क था। डेहरी टूटी थी कमल ने शिवकुमार को मना लिया कि वो नदी से मिट्टी निकाल लायेगा ताकि नई डेहरी बनायी जा सके। शिवकुमार तैयार हो गया वो नदी से मिट्टी लाने गया। उसने किनारे से थोड़ी मिट्टी निकाली। अब ये नशे की पिनक थी या दैवीय संयोग कि उसने चंद्र फटे वाले स्थान पर मिट्टी की थाह लेने की सोची। प्रकृति की चुनौती स्वीकार करके उसने प्रकृति से पंजा लड़ाया। कुदरत अपने कमजोर बच्चों का लालन-पालन तो कर सकती है मगर उनकी चोट नहीं सह सकती। शिवकुमार ने चंद्र फटे स्थान पर मिट्टी की टोह तो ले ली मगर उस घूमते पानी से वो निकल न सका। लोगों के सामने हाथ पैर पटकते हुये वो उस जलराशि में डूब मरा। मिट्टी निकालने गया था मिट्टी में मिल गया जल समाधि लेकर। लोग बाग उसे डूबता छटपटाता देखते रहे मगर चंद्र फटे स्थान पर दैवीय प्रकोप के डर से कोई उसे बचाने आगे न आया। घंटे भर बाद ही फूलकर शिवकुमार की लाश नदी के तट पर आ गयी। शिवकुमार की लाश पर ही गाँजे और पूते गुत्थम-गुत्था होकर लड़ रहे थे। बडे भाई की लाश पड़ी थी और दोनों छोटे भाई इस बात पर मार-पीट कर रहे थे कि अब बप्पा की नौकरी कौन लेगा। खून-खच्चर हो चुके दोनों भाईयों को गाँव के लोगों ने बमुश्किल अलग किया। कमल ने दोनों को फटकारा, समझाया और घर के अंदर लिवा ले गया। समय आने पर ये कर्माही भी हो गयी। मृतक आश्रित की फाइल दफ्तर से वापस ले ली गयी थी क्योंकि मृतक आश्रित का दावेदार भी अब मृतक हो चुका था। गाँव में दाँव-पेच अपने शबाब पर था। कोई भगत पुत्रों से खेत लिखवाने के फिराक में था तो कोई इस फिराक में था कि दोनों भाईयों में से किसी एक को अपनी तरफ मिला लिया जाये कि आगे अगर उसको नौकरी मिल गयी तो उससे कुछ कर्जा-धर्ता लिया जा सके। दोनों भाई भी अपने-अपने मंसूबे पाल रहे थे। भविष्य में नौकरी, विवाह और न जाने क्या-क्या सपने थे उन आधे अधूरों के। छोटी-सी कद काठी वाले पूते के सपने काफी मजबूत थे। भगत के बड़े बेटे शिवकुमार का विवाह हुआ तो था मगर उसकी बेऔलाद बीवी संतान पाने के नुस्खों की दवाइयाँ खाते-खाते मर गयी। भगत ने बहुत प्रयास किया मगर उनके अल्लाम नशेड़ी बेटे का दूसरा विवाह न हो सका। पूते की शादी को एक दो बियाहु आये भी थे मगर भगत पहले शिवकुमार का ही दूसरा विवाह करना चाहते थे क्योंकि अवध के गाँवों में एक रिवाज है कि अगर छोटे भाई की शादी हो जाये तो फिर बड़े भाई का

विवाह नहीं होता। भगत इसीलिये पूते का विवाह टालते रहे थे क्योंकि उनकी ये पीढ़ी तो चौपट थी। उनकी इच्छा थी कि शिवकुमार का एक बार फिर से विवाह हो जाये उनका कुल चल पाये तो फिर ले-देकर पूते का भी विवाह किसी तरह कर ही देंगे। हालाँकि पूते का छोटा भाई पागल था मगर पागल का भाई होने के नाते पूते को भी लोग बैधा (पागल) कहते थे। भगत इस सबसे अनजान न थे। एक बाप अपनी दो साल की बची नौकरी में अपने तीन आधे-अधूरे बच्चों को बसा देने का जी तोड़ प्रयास कर रहा था। मगर दूध की हाँडी सर्प पर क्या उलटी, उस घर की दुनिया ही उलट-पलट गयी। शिवकुमार की मृत्यु के बाद पूते अपनी नौकरी को स्वाभाविक और अपने विवाह को अवश्यम्भावी मान कर चल रहा था। उसे अपने चचेरे भाई कमल पर बहुत विश्वास था। उधर कमल गाँव के मीन-मेख, न्याय-अन्याय की बातों से बहुत सशंकित था। मिनटों में एक गल्ती से उसके समीकरण बिगड़ सकते थे। उसने एक युक्ति निकाली, गाँव के हस्तक्षेप से बचने के लिये वो दोनों भाईयों को फूला बहाने (अस्थि विसर्जन) के बहाने हरिद्वार ले गया। पूते की सम्भावित नौकरी और विवाह की सम्भावनाएँ सामने थीं। उसने जाने से पहले बरदेखुआ लोगों से साफ कह दिया था कि मृत्यु के कारण एक साल तक घर छुतिहा (अशुभ) है इसलिये इस वर्ष विवाह नहीं हो सकता। पूते भी इस बात पर राजी हो गया था। हरिद्वार से जब एक माह बाद वो तीनों लौटे तो गाँव धान की कटाई में मशगूल थी। गाँव में पँवारा फसल की व्यस्तता के अनुसार ही होता है। कमल ने एक दिन उन दोनों भाईयों को हाजिर करके बीमा और बकाया बैंक बैलेंस निकाल लिया और उस पैसे को अपने खाते में जमा कर लिया। उसने भगत पुत्रों को समझाया कि इतना पैसा घर ले जाने पर रास्ते में बदमाश हमला कर सकते हैं और गाँव में चोर डकैत भी आ सकते हैं। भगत पुत्रों ने अपने जान की अमान मानी और कमल के प्रति कृतज्ञ भी हो गये। गाँव शांत था और बड़ी शांति से पूते को पागल घोषित होने का चिकित्सीय प्रमाण-पत्र बनवा दिया गया और गोंजे को मृतक आश्रित की नौकरी दिला दी गयी। शिवप्रसाद और शिवप्रकाश की पहचान से बचने के लिये शिव शुक्ला के नाम से मानसिक बीमारी का प्रमाण-पत्र बनवा लिया कमल ने। प्रसाद और प्रकाश में मामला ऐसा उलझा कि दोनों ही भाई शिव बनकर रह गये। इसी के बलबूते पर सचेत भाई पागल घोषित कर दिया गया और पागल भाई सचेत और तुर्रा ये है कि दोनों ही शिव शुक्ला और दोनों की वल्दियत भगत।

उपर्युक्त घटना को काफी वक्त बीत चुका है। पूते पंडित अब गाँव के अधियार लम्मरदार शुक्ल की गायें चराते हैं और वहीं खाते-पीते रहते हैं क्योंकि गाँजे का सामना होते ही उन दोनों में मारपीट शुरू हो जाती है।

गोंजे कमल के ही घर रहता है कभी-कभार नंगे पाँव नदी पार करके ड्यूटी पर चला जाता है। उसके हिस्से की नौकरी कमल ढो रहा है साहबों को कुछ दे-दिलाकर। गाँव के किसी चुहलबाज व्यक्ति ने कचहरी में दरख्वास्त दे दी है, तमाम महकमों से इस बात की जब-तब दरयाफ्त होती रहती है कि दोनों भाईयों में बैधा कौन है?

बीता कल

अक्की शर्मा 'विकास'

सफ़र के साथ वक़्त
भी बदल जाएगा !
जो छूट गया आज वो
कल नहीं आएगा !
खो जायेगा वो कल
हज़ारों " कल " में
जैसे ज़मींन से उड़ता धुआँ बादलों में मिल जायेगा.

रह जायेगा तू इंतज़ार करता
वह न जाने कब
निकल जायेगा
बच जायेंगे वही पछतावे के पल
पर वो बीता कल नहीं आयेगा.

रह जाएँगी सिर्फ यादें जीने को
और हल भी जीने
का मिल ही जाएगा
बीत जाने पर भी हज़ारों कल
वो बीता कल नहीं आएगा.

सिसक-सिसक के रोना खुशियों में
बदल ही जाएगा
पत्थर दिल वाला इन्सान
भी एक दिन पिघल जायेगा

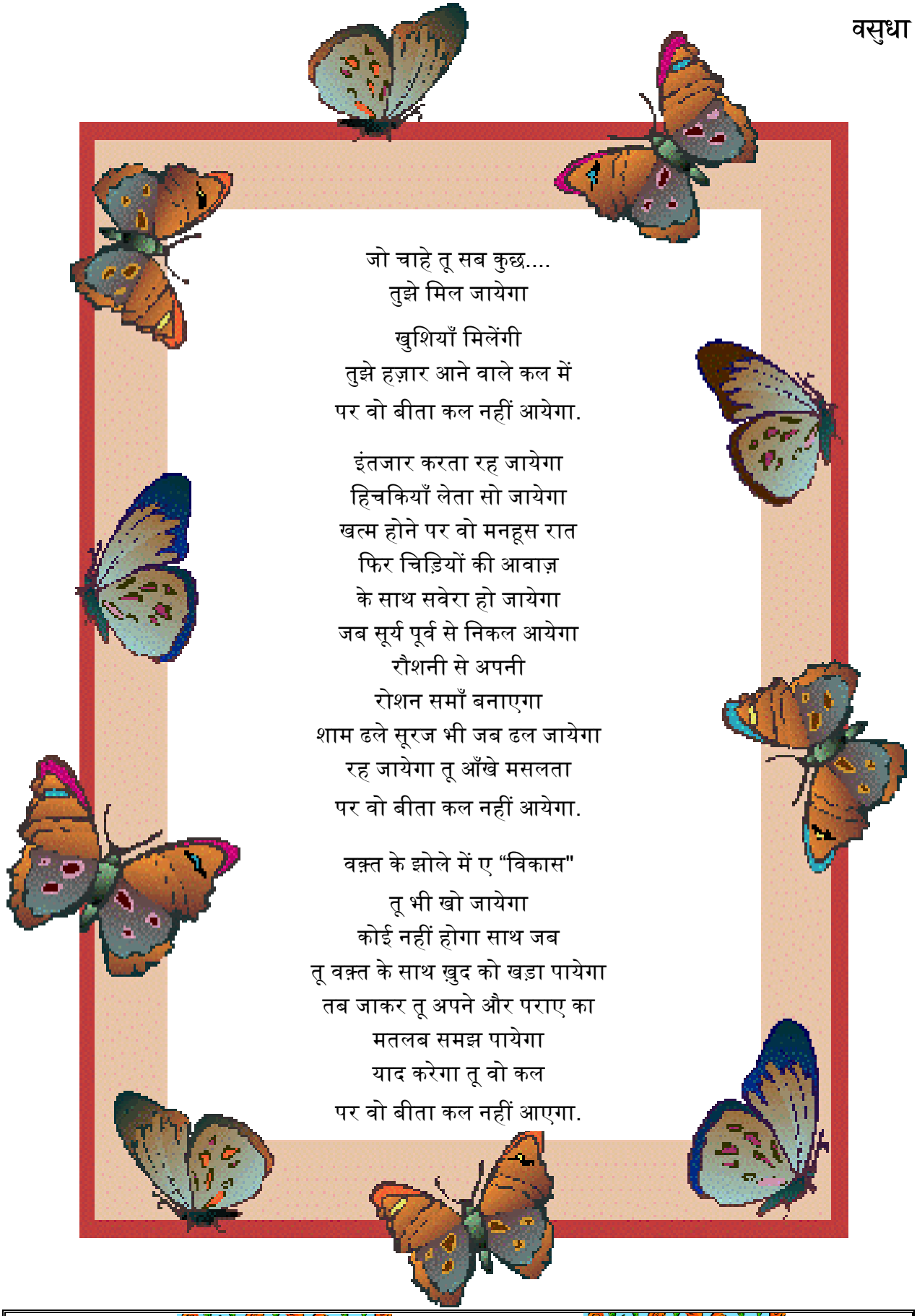

जो चाहे तू सब कुछ....
तुझे मिल जायेगा

खुशियाँ मिलेंगी
तुझे हज़ार आने वाले कल में
पर वो बीता कल नहीं आयेगा.

इंतजार करता रह जायेगा
हिचकियाँ लेता सो जायेगा
खत्म होने पर वो मनहूस रात
फिर चिड़ियों की आवाज़
के साथ सवेरा हो जायेगा
जब सूर्य पूर्व से निकल आयेगा
रौशनी से अपनी
रोशन समाँ बनाएगा
शाम ढले सूरज भी जब ढल जायेगा
रह जायेगा तू आँखे मसलता
पर वो बीता कल नहीं आयेगा.

वक़्त के झोले में ए "विकास"
तू भी खो जायेगा
कोई नहीं होगा साथ जब
तू वक़्त के साथ ख़ुद को खड़ा पायेगा
तब जाकर तू अपने और पराए का
मतलब समझ पायेगा
याद करेगा तू वो कल
पर वो बीता कल नहीं आएगा.

डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार

डॉ. स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, चतुर्थ संस्करण)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, द्वितीय संस्करण)
श्रीरामप्रिया सीता	(उपन्यास)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण	(शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम	(उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस	(शोध-ग्रन्थ)
कैकयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
चिन्तन के धागों में कैकेयी - संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण	(शोध-ग्रन्थ)
आज का समाज	(सामाजिक लेख-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
काव्य-धारा	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
उपनिषद दर्शन	(दार्शनिक एवं अध्यात्मिक)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी आलेख)
काव्य हीरक	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
बौछार	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
आत्म-गुंजन	(अध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह, फेडरल गवर्नमेन्ट, कैनेडा द्वारा अधिकतम अनुदान से सम्मानित)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२, भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW, England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित